वर्ष १ अंक ९
विक्रम संवत् २०७६ ज्येष्ठ
जून २०१९

आर्ष क्रान्ति

वैदिक समाज व्यवस्था के लिए समर्पित

आर्य लेखक परिषद्

ओ३म्

आर्य लेखक परिषद् का मुख पत्र

आर्ष क्रान्ति

जून २०१९

वर्ष—१ अंक—६,
विक्रम संवत् २०७६
दयानान्दाब्द— १९५
कलि संवत् — ५११६
सृष्टि संवत् —१,९६,०८,५३,१२०

प्रधान सम्पादक
वेदप्रिय शास्त्री
(७६६५७६५११३)

❖

समन्वय सम्पादक
अखिलेश आर्येन्दु
(८१७८७१०३३४)

❖

सह सम्पादक
प्रांशु आर्य (कोटा)
(९९९३९७०९४०)

❖

सहयोगी सम्पादक
आरती (प्रयागराज, उ.प्र)

❖

आकल्पन
प्रवीण कुमार (महाराष्ट्र)

❖

सम्पादकीय कार्यालय
ए—११,त्यागी विहार, नांगलोई,
दिल्ली—११००४१
चलभाष— ८१७८७१०३३४

अनुक्रम

विषय	पृष्ठ
१ खूब कहना हो चुका (सम्पादकीय)	०३
२ राजी हैं हम उसी में (कविता)	०५
३ सभ्यताओं का इतिहास......	०६
४ किसको सूर्य रास्ता नहीं दिखाता ?	०९
५ One Fighter Class in Civilized....	१०
६ जीवन में कर्म की प्रधानता	१३
७ पण्डित कौन ?	१६
८ श्रेष्ठ कामना करें	१७
९ लोकसंग्रह और साहित्य	१९
१० नहीं कोई मिलता	२०
११ प्रदूषणों से घट रही है	२१
१२ पर्यावरण	२२
१३ बॅ.सावरकरांचे डॉ.आंबेडकरांना आमंत्रण	२३

ईमेल — aryalekhakparishad@gmail.com
वेबसाइट — https://aryalekhakparishad.com/
फेसबुक — आर्य लेखक परिषद्

Digital

सम्पादकीय

खूब कहना हो चुका, अब खूब होना चाहिए

आपका मस्तिष्क बहुत तेज है, आपकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण है। आप ज्ञान के भंडार हैं, इतिहास के ज्ञाता हैं, कुरान और हदीसों के माहिर हैं, पुराणों के पण्डित हैं, विज्ञान विशारद हैं, धर्म धुरन्धर हैं, शास्त्रार्थ महारथी हैं। हमें आपकी योग्यता पर गर्व है। परन्तु खेद इस बात का है कि आपके हाथ पैर काम नहीं कर रहे, आप विकलांग हैं, बैसाखी के सहारे भी नहीं चल सकते। संकट आने पर सिर्फ चिल्ला सकते हो, कर कुछ भी नहीं सकते। तब क्या तुम्हारी सोच का, तुम्हारे सपनों का कोई महल या बगीचा बन सकता है ? क्या तुम्हारा चिंतन साकार हो सकता है ? कभी नहीं।

तब क्या होगा ? तब आपका आहार, विहार और व्यवहार सब कुछ पराधीन हो जाएगा। दासता का जीवन जीने के लिए विवश होंगे। तब न आपकी अपनी भाषा होगी, न अपना कर्मकाण्ड और न इतिहास। आपका माल औरों के हाथों में होगा और आपके घर पर औरों का कब्जा। अपने अरमानों को मन में दबाए हुए ही इस संसार से प्रस्थान करना होगा। हाँ! एक उपाय है कि यदि आप अपने विचारों का साकार रूप देखना चाहते हैं तो विचारों के अनुसार कार्य करने वाले हाथ–पैर खोजने होंगे।

यहां आप से तात्पर्य महर्षि दयानन्द के अनुयायियों से है। इनमें वक्ता ही वक्ता मिलेंगे, श्रोता और कर्ता ढूंढने पर ही कहीं मिलते हैं। इसलिए तरह–तरह के ड्रामे होने लगे हैं, कहीं कवि सम्मेलन, कहीं राम कथा, कहीं बहुकुण्डी यज्ञ, कहीं योग शिविर आदि–आदि। कुल मिलाकर पण्डागीरी का बोलबाला है। वेद प्रचार व्यवसाय बन चुका है, मुनाफाखोरी चरम पर है।

एक लम्बे अरसे से आप लोग मुसलमानों, ईसाइयों, नक्सलियों, की पोल खोलने का दावा करते आ रहे हैं। जब कि सच्चाई यह है कि उनका कोई कार्य छुपा हुआ नहीं है। उनका कार्य खुला हुआ और योजनाबद्ध है। यही नहीं उनका कार्यक्रम आधुनिक साधनों से लैस है। वे बुलेट ट्रेन और राकेट से दौड़ रहे हैं और आपकी वही पुरानी भैंसा गाड़ी चल रही है जिसके भैंसे भी अब बूढ़े और बीमार हो चुके हैं।

हमारे देश में हिन्दुओं के अतिरिक्त अन्य लोग भी अच्छी खासी संख्या में रहते हैं। यदि वे अपनी विचारधारा का प्रचार करते हैं, अपनी सत्ता स्थापित करने का यत्न करते हैं, तो इसमें बुरा क्या है ? यहाँ रहने वाले मुसलमान, ईसाई आदि यही के नागरिक हैं, उन्हें आप बाहर नहीं निकाल सकते। वे लोग अपनी सुरक्षा और विकास में प्राण पण से लगे हुए हैं। दूसरी और आप उन्हें कोसने, गाली बकने अथवा रोने में लगे हैं। आप अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए अपने को स्थापित करने के लिए, स्वयं को सुदृढ़ करने के लिए कुछ भी नहीं कर रहे। जो कुछ कर रहे हो वह तुम्हारे सर्वनाश का ही कारण बनेगा। जो लोग स्वामी दयानन्द और वैदिक धर्म को फूटी आँख भी देखना पसंद नहीं करते, पाखण्ड को जो लोग सनातन धर्म बताते हैं, आप लोग उनको अपना हितैषी समझे बैठे हैं, वे लोग खुलेआम आपका सर्वस्व लूटने में लग रहे हैं। आप के अस्तित्व को खतरा है। अतः प्रथम कार्य **'आत्मानम् रक्षेत् सततम्'** ।

जब खजाना लुट गया फिर होश में आए तो क्या।
वक्त खोकर दस्ते हसरत मलके पछताए तो क्या।।

फिर पछताए होय क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत।

आपको विदित होना चाहिए कि संसार में सर्वत्र विचारों का संघर्ष सदा चलता रहता है। जो गाफिल है, निष्क्रिय है, निर्बल है, वह हारेगा, स्वत्वहीन होगा इसमें कोई संदेह नहीं। आप लोग स्वयं कुछ न कर के परमुखापेक्षी हो रहे हैं। आप उनकी तरफ आशा भरी दृष्टि से देख रहे हैं, जो धर्म और संस्कृति की आड़ में मुनाफाखोरी करने वाले हैं। लोभी, लालची, चरित्रहीन लोग कभी क्रान्ति नहीं करते इसीलिए वेद अनुसार सन्नद्ध हों।

वेद क्या कहता है देखिए –

'स्वयं वाजिन्स्तन्वं कल्पयस्व'
'स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व'
'महिमा ते अन्येन न सन्नशे।।
यजुर्वेद 23–15'

औरों का सहारा छोड़ो, स्वयं बलवती इच्छा के साथ समर्थ बनो, पुरुषार्थ करो और प्राप्तव्य को प्राप्त करो।

आँख खोल कर देखो, आपसे भी दुर्बल और साधन हीन जातियाँ अपने अस्तित्व के लिए सतत संघर्षशील हैं। उन्हें अपनी भाषा, अपनी संस्कृति अपने दीन ईमान पर गर्व है और विपरीत परिस्थितियों में भी वे उन्हें जीवित रखने में जी जान से जुटे हुए हैं।

इधर आप लोगों को न अपनी भाषा अच्छी लगती है, न अपना बोलचाल और न रहन सहन। आप नाम मात्र के वैदिक धर्मी हैं, जीते यूरोपियन ढंग से हैं। आपका दोहरा चरित्र ही आपके पतन का कारण है।

महर्षि दयानन्द ने कहा था – 'अगर उन्नति करना चाहते हो तो आर्य समाज के साथ मिलकर उसके उद्देश्यों के अनुसार आचरण करना स्वीकार करो अन्यथा कुछ भी हाथ नहीं लगेगा।'

आपने आर्य समाज के नाम से एक सहकारी संस्था बना ली परन्तु आर्य समाज के उद्देश्यों के अनुसार आचरण स्वीकार नहीं किया। आर्य समाजों में आप जो कर रहे हैं वह उसके उद्देश्य से विपरीत ही है।

आपने सचमुच का आर्य समाज बनाया ही नहीं। आप यदि इस आर्य समाज में कभी न जाएँ तो आपका कोई काम रुक नहीं सकता। परन्तु समाज उसको कहते हैं जहाँ न जाने से हमारे सब काम रुक जाएँ, जिसके बिना हमारा निर्वाह ही न हो सके। समाज का अपना एक कर्मकाण्ड होता है, जन्म से मृत्यु पर्यन्त के सारे क्रियाकलाप उसी के अनुसार होते हैं। आप आर्य समाज के कर्मकाण्ड को भी नहीं अपना सके। ऐसे समाज में कोई आकर क्या करेगा ? आपने महर्षि दयानन्द और आर्य समाज को अव्यावहारिक और अप्रासंगिक बना कर रख दिया है।

क्या आप जो दूध पीते हैं वह शुद्ध और गाय का दूध है ? जिस घी से आप यज्ञ करते हैं क्या वह सचमुच का घी है और क्या वह गाय का घी है ? समिधायें और सामग्री क्या सचमुच वैसी हैं जैसा विधान है ?क्या आपको संस्कृत भाषा आती है और आप प्रतिदिन वेद का स्वाध्याय करते हैं ? क्या आप अपनी आय का शंताश आर्य समाज को देते हैं ? प्रायः नहीं।

आर्य समाज के सदस्यों की शिक्षा, चिकित्सा की सुविधा उनकी निर्धनता, दीनता, विपन्नता निवारण की व्यवस्था है क्या ? किसी पीड़ित प्रताड़ित की सुरक्षा और भूखे को भोजन देने की क्षमता है क्या? समाज के बेरोजगार युवकों को रोजगार देने–दिलाने का प्रबन्ध है क्या? यदि नहीं तो ऐसा समाज किस काम का जहाँ सदस्यों की किसी समस्या का समाधान नहीं हो सकता। अस्तु! आपका कर्मकाण्ड यही है जो आपको करना है।

भरपूर शुद्ध गोदुग्ध, गोघृत, समिधा हवन सामग्री का उत्पादन करिए। सौगंध खाइए कि गाय का दूध और घी ही प्रयोग करेंगे। इनके लिए गौपालन और समिधाओं वाले वृक्षों का आरोपण यह प्रथम और मुख्य कार्य है। इसके पश्चात् आधुनिक सुविधाओं और उपकरणों से युक्त चिकित्सालय, औषधि निर्माण केंद्र और औषधि उत्पादन उद्यान तथा पशु चिकित्सालय स्थापित करें। बालक–बालिकाओं के लिए निःशुल्क शिक्षा केंद्र बनाएँ और अपना पाठ्यक्रम लागू करें। आपके शंताश का एक कोष स्थापित करें, उससे प्रतिभाशाली निर्धन बालकों की उच्च शिक्षा तथा निर्धन सदस्यों को व्यापार के लिए प्रारंभिक पूंजी उपलब्ध कराएँ। वैवाहिक सम्बन्ध आर्यों के आर्यों में ही हों ऐसी व्यवस्था करें। उत्सव और प्रचार कार्य का व्यवसायिक रूप समाप्त करें। संस्कारों, उत्सवों पर आर्य बंधु परस्पर ही गीत गायन और प्रवचन की परम्परा प्रचलित करें। सामान्य भोजन की व्यवस्था रखें ताकि अमीर–गरीब सब का निर्वाह हो जाए। आर्य परिवारों का जनगणना और जन्म–मृत्यु का रजिस्टर बनाएँ ताकि यह विदित रहे कि देश में आर्य स्त्री, पुरुष और बालक–बालिकाओं की संख्या कितनी है। बना सकते हैं तो एक ऐसा आर्य समाज देश में बना लें, आप देखेंगे कि लोग आपकी ओर दौड़े चले आ रहे हैं।

कर्मकाण्ड यज्ञ, संस्कार आदि के लिए सारे देश में समितियाँ गठित करें जो जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त का सम्पूर्ण कर्मकाण्ड सम्पादित करवायें। परिवार की तरफ से केवल समिति को सूचित करना होगा परन्तु कर्मकाण्ड की सामग्री और साधन जुटाकर विधिवत् क्रियाकलाप करवाना समिति का दायित्व होगा। समिति अपने–अपने क्षेत्र के आर्य परिवारों का लिखित संज्ञान रखें कि किस परिवार में कौन से संस्कारादि करवाने हैं, इसके लिए केंद्र की ओर से समितियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए। इससे कर्मकाण्ड की एकरूपता बनी रहेगी। प्रारम्भ और अंत सर्वत्र एक

जैसा ही होगा। पण्डागीरी और पाखंड प्रचलन को रोका जा सकेगा। सम्पूर्ण देशभर के आर्य परिवारों में संस्कार विधि को प्रतिष्ठित करें और किसी भी स्थिति में पौराणिक कर्मकाण्ड का प्रवेश न होने दें। इस पर कठोरता पूर्वक आचरण करना होगा । देश के विभिन्न भागों में प्रचारक व्यवस्था केंद्र की तरफ से की जानी चाहिए। प्रत्येक क्षेत्र की प्रचार की रूपरेखा और कार्यक्रम केंद्र ही बनावे। यह कार्य उस क्षेत्र के सभी आर्य परिवारों के सहयोग से सम्पादित होना चाहिए।

राजनीति के क्षेत्र में सम्पूर्ण संगठन उसी पार्टी को या व्यक्ति को समर्थन दे जो आर्य समाज को प्रतिष्ठित करने में सहयोग करें। इसका निर्णय केंद्रीय आर्य समाज स्वयं करें। क्षात्र संगठन, महिला संगठन, इतिहास संरक्षण, साहित्यिक संगठन इस प्रकार पृथक–पृथक प्रकोष्ठ केंद्र स्वयं बनाकर कार्य करे। आप लोग मिलकर इस प्रकार कर सकते हैं तो करिए नहीं तो कुछ हाथ नहीं लगेगा।

– वेदप्रिय शास्त्री

अधर्म

जिसका स्वरुप ईश्वर की आज्ञा को छोड़कर और पक्षपात सहित अन्यायी
होके बिना परीक्षा करके अपना ही हित करना है। जिसमें अविद्या, हठ, अभिमान,
क्रूरतादि दोषयुक्त होने के कारण वेदविद्या से विरुद्ध है, इसलिये यह अधर्म सब मनुष्यों को छोड़ने के योग्य है, इससे यह अधर्म कहाता है।

– महर्षि दयानन्द सरस्वती

राजी है हम उसी में

कोई आरजू न अपनी, तेरा होके ही मजा है,
राजी हैं हम उसी में, जिसमें तेरी रजा है।।

जिनका न कोई अपना, उनका तू देवता है,
दाता दयालु है तू, माता है और पिता है।
तेरी शरण है अमृत, तुझे भूलना कजा है।।
राजी हैं....... ।१।

मुझको पता है इतना, तू कर्मफल प्रदाता,
करता है जैसा जो भी, वैसा ही फल है पाता।
कोई कैद मुक्त होता, कोई भोगता सजा।।
राजी हैं....... ।२।

हम अल्पबुद्धि प्राणी, सब कुछ तू जानता है,
अपने भले–बुरे का, हमको न कुछ पता है।
तेरे बगैर मालिक, जीवन ही बेमजा है।।
राजी हैं....... ।३।

मुझको न कुछ फिकर है, जब साथ तू है मेरे,
मेरा डूबना या तरना, अब हाथ में है तेरे।
जग को मैं तज चुका हूं, तुझको नहीं तजा है।।
राजी हैं....... ।४।

तुझसा न और कोई, जिसकी शरण में जाऊं,
दाता न दूजा ऐसा, जिसके दिए अघाऊं।
यों सोच ''वेदप्रिय'' ने, तुझको सदा भजा है।।
राजी हैं....... ।५।

- वेदप्रिय शास्त्री
सीताबाड़ी, केलवाड़ा

सभ्यताओं का इतिहास और इतिहासकारों की सभ्यता

– अखिलेश आर्येन्दु

भारतीय इतिहास की पुस्तकों में पढ़ाए जाने वाले भारतीय इतिहास पर गवेषकों की दृष्टि किस प्रकार की है, इसे समझना आवश्यक है। ....भारत के करोड़ों वर्षों के इतिहास को जानने का कोई माध्यम हमारे पास नहीं है।... भारत में आज जैसी इतिहास लिखने की कोई परम्परा नहीं रही है। ऐसा वामपंथी और विदेशी इतिहासकार मानते हैं। इसके पीछे इनके तथ्य व तर्क किसी ठोस परिणाम पर नहीं पहुँचाते। इसके बावजूद भारत के इतिहासकार विदेशी इतिहासकारों के प्रत्येक तर्क या बकवास को उचित ठहराते हैं। छोटी कक्षाओं से लेकर शोधार्थी छात्रों को जो इतिहास पढ़ने को मिलता है, वह इतिहास की परिभाषा को लेखन के आधारों को पूर्णतः अंगीकार नहीं करते। स्वतंत्रता के उपरान्त इतिहास लेखन को लेकर इतिहासकारों में कोई उद्‌देश्य पारकता, इतिहास–दृष्टि और निष्पक्षता की दृष्टि द्रष्टव्य नहीं होती। इसका परिणाम यह हुआ, भारत के अतीत के सम्बंध में भारतीयों को ही नहीं अपितु विश्व समाज में भी भ्रमपूर्ण और गलत जानकारी मिलती रही। राजनीतिक स्वतंत्रता के सत्तर वर्षों में भारतीय समाज अपने अतीत पर गर्व करने की अपेक्षा हीन भावना से ग्रस्त हुआ। भारतीय इतिहासकारों की दृष्टि वामपंथी रही या विदेशी। इतिहासकारों में इतिहास लेखन के तीन आधारों पर स्वस्थ्य व निष्पक्ष दृष्टि का अभाव होने के कारण इतिहास से सीखने या प्रेरणा लेने के स्थान पर, भारतीय जनमानस 'दग्धपटन्याय' से निरंतर ग्रसित होता गया। अपने इतिहास के प्रति भारतीय जनमानस में भ्रम और हेय–दृष्टि पैदा करने का कार्य अंग्रेज पादरियों व विदेशी इतिहासकारों ने भले किया हो, लेकिन उसे खाद–पानी वामपंथी भारतीय इतिहासकारों ने दिया। आज आवश्यकता है नये सिरे से पुनः इतिहास लेखन की। ऐसे इतिहासकारों से भारतीय इतिहास लिखवाने की आवश्कता है जिनमें इतिहास की सही दृष्टि हो, जो इतिहास के ज्ञाता हों और जो भारतीय संस्कृति, सभ्यता, साहित्य, ज्ञान–विज्ञान, भारतीय राजवंश परम्परा, भारतीय पुरातत्व और अब तक के घटना–क्रम को ठीक–ठीक जानते–मानते हों। कहा जाता है, किसी देश को रसातल में ले जाना हो तो, उस देश के इतिहास को 'झूठ का पुलिंदा' बना दो या षड्‌यंत्रकारी दृष्टि से भर दो। दुर्भाग्य से भारतीय इतिहास के साथ ये दोनों कवायदें की गईं। पिछले सत्तर वर्षों में भारतीय जनमानस को वह इतिहास और भूगोल पढ़ाया जा रहा है जो भारत के गौरव, गरिमा, महिमा, भव्यता, सांस्कृति–वैभव और धार्मिक सहिष्णुता को ढकने वाले हैं। हर क्षेत्र और प्रत्येक विषय पर तर्क और विमर्श करना ठीक समझा गया, लेकिन इतिहास–लेखन पर तर्क और विमर्श की गुंजाइश ही नहीं रखी गई। अब समय आ गया है कि भारतीय इतिहास को भारतीय–दृष्टि, निष्पक्ष–दृष्टि और गवेषणा की दृष्टि से लिखा जाए। यदि ऐसा नहीं हुआ तो, अब नहीं तो कब? पाठकगण, शृंखला का यह लेख आप को कैसा लगा, पत्र द्वारा अवश्य बताएं।

– समन्वय सम्पादक

सभ्यताओं का इतिहास

भारतीय पुरातत्व के माध्यम से भारतीय इतिहास की जानकारी के लिए अभी तक जो उत्खनन किए गए हैं उनसे अनेक प्रकार की जानकारियाँ प्राप्त हुई हैं। लेकिन इन जानकारियों को लेकर विभिन्न मत हैं। विदेशी और वामपंथी इतिहासकार, गवेषक और पुरातत्व वेत्ताओं का जो मत, उससे भिन्न मत भारतीय पुरातत्व और इतिहासकारों का है। जैसे हड़प्पा सभ्यता की खोज के बाद यह विचारणीय प्रश्न उभर कर आया कि, क्या हड़प्पा सभ्यता से वैदिक सभ्यता का कोई सम्बंध है? विदेशी इतिहासकार ह्वीलर, मार्शल और मैकाय ने हड़प्पा और मोहनजोदड़ों (सभ्यताओं) के सम्बंध में जो निष्कर्ष प्रस्तुत किये वे निष्पक्ष और सत्य पर आधारित

नहीं लगते हैं। इन विदेशी गवेषकों ने अपना निष्कर्ष इस प्रकार निकाला है–''परिस्थितियाँ इस बात की गवाह है कि इस हत्या का दोष (आर्यों के सेनापति) इन्द्र पर आता है।''गौरतलब है इन गवेषकों ने नर संहार की एक मनगढ़ंत कहानी रची, और उसके आधार पर उन्होंने तथाकथित आक्रमणकारी आर्यों द्वारा भारत के मूल निवासियों पर आक्रमण करके उनके वध की एक मनगढ़ंत कहानी लिखी और इस आधार पर उन्होंने सभ्यताओं के तथाकथित इतिहास को गढ़ने का कुत्सित प्रयास किया। ये दोनों सभ्यताएँ कैसे विकसित हुईं और इनका विनाश का क्या कारण बना, को भी उपरोक्त विदेशी गवेषकों ने मनमाने ढंग से प्रस्तुत किया। सबसे हैरान करने वाली बात यह है कि डेल्स मोहनजोदडों के ऊपरी स्तर पर पुनः मिले कंकालों का हत्याओं से कोई सम्बंध नहीं है और जिन पुरातात्विक सन्दर्भों में पाये जाते हैं उनसे सिद्ध होता है कि प्राप्ति स्थल पर ये देर से पहुँचे। और डेल्स ने गहराई से पड़ताल करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि मोहनजोदड़ों ही नहीं, हड़प्पा के अन्य नगरों का पतन भी बाढ़ के कारण हुआ था। अंत में डेल्स को नरहत्या वाली बात भी मनगढ़न लगने लगी। यही पर थोड़ी देर रुक कर यह जानने का प्रयास करते हैं कि, किस प्रकार विदेशी षड़यंत्रकारी गवेषक और इतिहासकारों ने एक मनगढ़न्त कहानी मोहनजोदड़ों, सिन्धु और वैदिक सभ्यता के सम्बंध में बहुत ही सावधानी पूर्वक रची और उसे वास्तविक सिद्ध करने के लिए मनगढंन्त प्रमाणों को जुटाने का कुत्सित प्रयास किये।

आइए, सबसे पहले देखते हैं कि विदेशी पुरातत्व और इतिहास के जानकार मोहनजोदड़ों, हड़प्पा और वैदिक सभ्यता के काल निर्धारण में कितनी गहराई और साक्ष्य को प्रमाण के साथ प्रस्तुत करते हैं। हड़प्पा सभ्यता, मोहनजोदड़ों और वैदिक सभ्यता का इतिहास–जो पाठ्य–पुस्तकों में वर्णित है, विदेशी पुरातत्व शास्त्री और इतिहासकारों द्वारा निर्धारित काल, साक्ष्य, तथ्य और कल्पना के आधार पर है। इसमें ह्वीलर, मार्शल, कीथ, डेल्स और मैकाय सम्मिलित हैं। ह्वीलर के अनुसार हड़प्पा का काल 2000–2500 ईसा पूर्व का है। यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि ह्वीलर ने आर्यों के तथाकथित भारत पर आक्रमण की जो कल्पित कहानी वास्तविक कहानी के रूप में प्रस्तुत की, वह हड़प्पा के काल निर्धारण से हवा में उड़ने लगी। ऐसे में ह्वीलर को आर्यों के कथित आक्रमण के काल को बदलना पड़ा। ह्वीलर को ऐसा करना आवश्यक था ,क्योंकि हड़प्पा और मोहनजोदड़ों के निवासियों से कथित आर्य आक्रमणकारियों का सम्पर्क नहीं कराया जा सकता। यहाँ यह ध्यान देने के बात है कि विदेशी इतिहासकार, गवेषक और पुरातत्ववेत्ता अपने खोज के आधार पर ही यह मानने के लिए विवश हुये कि ईसा पूर्व से हजारों वर्ष पूर्व महाभारत और उसके बहुत पहले वेदों की रचना हो चुकी थी। ऐसे में हड़प्पा के लिए निर्धारित कालक्रम स्वयं खण्डित हो जाता है। एक बात पर और ध्यान देना होगा कि ह्वीलर आदि ने जो सभ्यताओं का इतिहास प्रस्तुत किया उन सभ्यताओं से सम्बंद्ध निवासियों को असभ्य– आचार–विचार, नैतिक मापदण्ड आदि से पिछड़े हुए बताया गया है। लेकिन जो साक्ष्य उत्खनन से प्राप्त हुए हैं उनसे यह पता चलता है कि हड़प्पा, सिन्धुघाटी और मोहनजोदड़ों के लोग पिछड़े हुए नहीं हो सकते। ऐसी स्थिति में आर्यों के हड़प्पावासियों पर आक्रमण की बात तो स्वयं मिथ्या हो जाती है।

दृष्टि और साक्ष्य

दरअसल, विदेशी पुरातत्ववेत्ता और इतिहासकार (कुछ भारत में जन्म लेने वाले इतिहासकार भी) जब मोहनजोदड़ों, हड़प्पा और सिन्धुघाटी की सभ्यता पर अपना मत प्रकट करते हैं तो वे बाईबल में वर्णित सृष्टि रचना का काल छह हजार वर्ष को ध्यान में रखकर चलते हैं। वे यह भी ध्यान में रखते हैं कि बाईबल में वर्णित सृष्टिकाल से पीछे की कोई सभ्यता का अस्तित्व धरती पर होना ही नहीं चाहिए, वरना बाईबल की सृष्टि–उत्पत्ति की बात झूठी हो जाएगी। यही कारण है कि जब सभ्यताओं के कालक्रम का निर्धारण विदेशी इतिहासकार और पुरातत्ववेत्ता करने लगते हैं तो अपनी कही बात को बार–बार बदलते हैं, फिर उसमें संशोधन करते हैं। राबर्ट राइक्स जिनकी देख–रेख में मोहनजोदड़ों की टोहपरक ड्रिलिंग की गई थी, अनेक बार इस नगर के बाढ़ ग्रस्त होने की पुष्टि करते हैं। हड़प्पा के अन्य स्थलों के उजड़ने का कारण भी वह प्राकृतिक आपदा मानते हैं। इस प्रकार कहीं से भी नरसंहार की पुष्टि नहीं होती है। गौरतलब है, कई विदेशी पुरातत्व शास्त्री और इतिहासकार द्वारा हड़प्पा और मोहनजोदड़ों सभ्यता के निवासियों पर आर्यों द्वारा

आक्रमण करके उनका नरसंहार करने की बात इतिहास की पुस्तकों में मिलती है। और अपने पुष्टि के लिए वे मनगढ़न्त कहानी रचते हैं। कुछ ऐसे विदेशी पुरातत्व शास्त्री भी हैं जो पुरातात्विक प्रमाणों के आने के बाद कालनिर्धारण में जब विफल साबित होने लगे तो वह पुनः अपने निष्कर्ष को बदलते भी हैं, उनमें ह्वीलर भी एक हैं। ह्वीलर लिखते हैं, उन्होंने बिना गहराई से विचार किये, झटके में की गई अटकलबाजी की थी, उसमें कोई तथ्य नहीं है।

ध्यान देने वाली बात यह है कि विदेशी पुरातत्व शास्त्री और इतिहासकारों को भारतीय धर्मग्रंथ, भारतीय तत्व शास्त्र और भारतीय पुरातत्व ज्ञान की जानकारी अत्यंत अल्प रही है। वेद और महाभारत का ज्ञान तो बहुत ही कम। लेकिन जहाँ अपने प्रमाण में डगमगाने लगे वेद में इतिहास खोजने लगे, और वेदों की समझ न होने पर भी वेदों का उद्धरण देने में नही चूके। एक उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाएगा। हड़प्पा सभ्यता के सम्बंध में विदेशी इतिहासकार इस सभ्यता के काल निर्धारण, सभ्यता की संस्कृति, साहित्य, इतिहास, निवासियों के आचार–विचार और कलाओं के सम्बंध में अत्यंत घटिया बाते कहते हैं। वे कहते हैं, हड़प्पा सभ्यता के निवासी अत्यंत पिछड़े हुए, अशिक्षित और अविकसित बुद्धि वाले थे। इसके पीछे उनका कोई प्रमाणिक दस्तावेज नहीं है। वहीं पर, भारतीय पुरात्ववेत्ता एस.आर. राव के निर्देशन में द्वारिका क्षेत्र में खुदाई की गई। इन खुदाइयों से यह प्रमाणित हो गया गया है कि हड़प्पा और भारतीय पौराणिक विवरणों की संगति दिखाई देती है। श्रीमान राव ने अपने इस तथ्य के पीछे अनेक तरह के पुरातात्विक साक्ष्य प्रस्तुत किए। उनके साक्ष्यों से प्रमाणित होता है कि हड़प्पा और वैदिक सभ्यताएँ अलग नहीं हैं। इसके भौतिक अवशेषों को सामने रखने पर हम इसे हड़प्पा नाम दे देते हैं और साहित्यिक साक्ष्यों को सामने रखने पर वैदिक सभ्यता कहकर पुकारते हैं। सभी तरह के पुरातात्विक प्रमाणों से यह मानने में कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिए कि हड़प्पा और वैदिक सभ्यता एक सभ्यता हैं, इनके नाम अलग–अलग कारणों से दिए गए। यहाँ यह ध्यान देने वाली बात है कि विदेशी सरारती इतिहासकारों ने जिस तरह से आर्य–दस्यु–द्रविण जैसी कल्पनाएं कीं और भारत को जाति, वर्ग और मत–सम्प्रदाय के आधार पर विभाजित करने का कुत्सित प्रयास किया, उसी तरह से हड़प्पा, मोहनजोदड़ों, सिन्धुघाटी और वैदिक सभ्यता के सम्बंध में भी अत्यंत षड्यंत्रकारी और पक्षपातपूर्ण नीति अपनाई।

अनेक विदेशी इतिहासकारों ने भारत की संस्कृति, सभ्यता, कला, धर्म, अध्यात्म, नीति, विद्या, विज्ञान और साहित्य को महत्व इस लिए नहीं दिया कि कहीं अंग्रेजी सभ्यता, संस्कृति, कला, ज्ञान–विज्ञान, साहित्य, धर्म और नीति निम्नतर न साबित हो जाय। इसके लिए उन्होंने साम, दाम, दण्ड व भेद सहित सभी तरह की नीतियों का सहारा लिया। यह बात अलग है कि वे अपने इस शरारत, षड्यंत्र और झूठ में कितना सफल हो पाए और कितना अफसल। जैसे अनेक विदेशी और वामपंथी इतिहासकार यह मानते हैं कि आर्य भारत के मूल निवासी नहीं थे, बल्कि उन्होंने यहाँ के मूल निवासियों को साम, दाम, दण्ड व भेद का सहारा लेकर परास्त किया। इसके पीछे जो वे प्रमाण प्रस्तुत करते हैं उनमें वर्ण–व्यवस्था आधारित समाज का भी है। लेकिन सत्य को कब तक छिपाया जा सकता था। रोमिला थापर जैसी वामपंथी इतिहासकार बेझिझक कहती हैं कि भारत से बाहर कहीं भी वर्ण–व्यवस्था नहीं पाई जाती, अतः आर्यों ने यह व्यवस्था हड़प्पा के आर्येत्तर जनों से ली होगी। एक दूसरे इतिहासकार आर.एस. शर्मा का भी मत है कि आर्यों में पुरोहितों की परम्परा हड़प्पा से ली होगी। अब प्रश्न यह है कि यदि भारत से बाहर वर्ण–व्यवस्था थी ही नहीं तो भारत से बाहर आने वाले आर्यों में भी नहीं रही होगी। इस प्रकार यदि आर्यों के समाज में ब्राह्मादि के रूप में वर्णव्यवस्था का अस्तित्व ही नहीं था तो भारत में आते ही पुराहितों की आवश्यकता कैसे अनुभव होने लगी? हमें यह ध्यान रखना होगा कि वर्ण–व्यवस्था का सर्वप्रथम उद्गम वेदों से है। और ऐसा देशी–विदेशी इतिहासकार मानते हैं कि वेदों की रचना आर्यों ने भारत में आने के बाद की। यही पर एक बड़ा प्रश्न यह है कि आर्यों के भारत आगमन से पहले हड़प्पा में रहने वाले आर्येत्तर जनों में पुरोहित कहाँ से मिल सकते थे? इस प्रश्न का उत्तर उन सभी इतिहासकारों को देना चाहिए कि हड़प्पा और वैदिक सभ्यता में किन बिन्दुओं को लेकर दोनों सभ्यताओं में वह बड़ा कालक्रम अन्तर और संस्कृति का अन्तर मानते हैं और क्यों?

इस सम्बंध में मेरा कहना यह है कि यदि हड़प्पा में रहने वाले समाज में हम वैदिक पुरोहितों का होना स्वीकार करते हैं तो हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि हड़प्पा का साहित्य और समाज सभी कुछ वैदिक है और अज्ञान व भ्रम के कारण (शरारत भी एक कारण है) इन दोनों के बीच सर्वथा कृतिम खाई तैयार की गई। मूल में भी भूल यह है कि किसी भी पहलू पर समग्र रूप से चिन्तन किया ही नहीं गया और निष्कर्ष दे दिया गया। इतिहासकारों की सबसे बड़ी भूल और अज्ञानता यह रही है कि वह यह पहले से ही मानकर चलते हैं कि 'आर्य' भारत के मूल निवासी नहीं थे और हैं। जब तक इस सबसे बड़ी भूल का सुधार नहीं किया जाता तब तक भारतीय इतिहास और समाज के साथ न्याय नहीं किया जा सकता है।

पाठकगण! श्रृखला का यह महत्वपूर्ण लेख आप को कैसे लगा? आप किन–किन बातों पर सहमत हैं और किन–किन बातों पर असहमत हैं, अपनी राय अवश्य दें। आप के ऑनलाइन पत्र का इंतजार रहेगा।

किसको सूर्य रास्ता नहीं दिखाता ?

शीतल पानी भी किसकी प्यास नहीं बुझाता

महर्षि याज्ञवल्क्य सत्संग कर रहे थे। हजारों लोग बैठे थे एक भक्त उठा और हाथ जोड़ कर महर्षि से प्रश्न किया –यदि संसार में सूर्य न निकले तो क्या हो ? पास में बैठे महर्षि के एक शिष्य बोले – अच्छे प्रश्न करते हो, अरे नहीं जानते, यदि संसार में सूर्य न निकले तो अँधेरा छा जाये, लोग गड्ढों में गिर पड़ें, रास्ता तक दिखे नहीं।

इधर एक दूसरे भक्त खड़े हुए और उन्होंने प्रश्न किया – यदि चंद्रमा न निकले तो क्या हो दुनिया का ? तो एक शिष्य बोले – यदि रात में चंद्रमा न निकले तो औषधियों के फलों का परिपाक कैसे होगा और चन्द्रमा के बिना रात्रि रूपी रमणी का श्रृंगार कैसे सजेगा!

एक तीसरे भक्त ने पूछा – यदि पानी बहना बंद हो जाये तो संसार का क्या हो ? तो एक शिष्य बोले – यदि पानी न बहे तो पेट में कैसे जायेगा, हम गंगा के किनारे भी तड़प जायेंगे। बड़ा विनाश होगा।

महर्षि याज्ञवल्क्य मुस्कुराए और बोले – ओ भक्तजनो ! सूर्य न निकले, चंद्रमा का उदय न हो, पानी बहने से रुक जाये तो तुम सोचते हो बड़ा विनाश होगा, पर इस महाविनाश से बड़ा विनाश भी एक है। यह सुनकर सभा में सन्नाटा छा गया। भक्तजन तो क्या बड़े–बड़े शिष्य भी स्तब्ध रह गए, सोचने लगे इससे बड़ा विनाश क्या होगा यदि सूर्य का उदय न होगा। पानी नहीं रहेगा तो बचेगा क्या ? कुछ समझ नहीं आया कि यह बड़ा विनाश क्या हो सकता है ? ऋषि बोले – जानते हो उस महाविनाश को ? भक्तजन बोले – नहीं महर्षे ! हमें उस महाविनाश का ज्ञान नहीं, कृपा करके हमें इस महाविनाश का ज्ञान कराओ । महर्षि याज्ञवल्क्य बोले **सुनो – 'यन्ति वा आपः। एत्यादित्यः। एति चन्द्रमाः। यन्ति नक्षत्राणि। यथा ह वा एता नेयुर्नकुर्युः। एवं हैव तदहर्ब्राह्मणो भवति। यदहः स्वाध्यायं नाधीते। तस्मात् स्वाध्यायोऽध्येतव्यः।'**

(शतपथ ११–५–८–१०)

देखो! पानी चल रहा है, सूर्य, चंद्रमा भी गतिमान है, नक्षत्र भी घूम रहे हैं। यदि यह देवता अपना काम एक साथ बंद कर दें तो निश्चित रूप से अनर्थ होगा। वैसा ही अनर्थ विनाश उस दिन होता है **जिस दिन यथार्थ ज्ञान का इच्छुक व्यक्ति स्वाध्याय नहीं करता, उस दिन मानो सूर्य भी नहीं निकला, चंद्रमा का उदय नहीं हुआ, पानी ने बहना बंद कर दिया।** भाव यह है कि स्वाध्याय (आत्मचिंतन) हीन पुरुष को यह चमकता सूर्य कल्याण का मार्ग नहीं दिखा सकता। वह सूर्य के प्रकाश में भी अपने सुपथ से विचलित हो जाता है। यह चंद्रमा की चांदनी जो आह्लाद की, आनंद की जननी है वह भी उसकी आत्मा के ताप को नहीं हरती, हरने की बात छोड़ो यह स्वाध्यायहीन पुरुष इस शीतल चंद्रिका में बैठा हुआ भी और अधिक जलता है अहो गंगा का यह पवित्र एवं शीतल वारि (पानी) भी इसकी अशांति रूप पिपासा का शमन करने में समर्थ नहीं। क्या गंगा के विमल तटवासी स्वाध्याय विहीन जन पाप रत नहीं, दुख मग्न नहीं ?

ऋषि गंभीर स्वर में फिर बोले– आः कितना नासमझ यह अज्ञानी है – नाशवान, अनित्य पदार्थों के संग्रह में निरुद्देश्य होकर पाप रत है, झूठ बोलता है, चोरी करता है, ठगता है। रिश्वत, चोरी और काला व्यापार करता है पर अंत में पाता क्या है? कुत्ता बन जाता है, बैल बन जाता है, दुख भोगता है। क्या यह महाविनाश नहीं? भक्त बोले – सत्य कहते हो महाराज आपने हमारा अज्ञान दूर कर दिया। महर्षि बोले समझ गये, भक्त बोले – हाँ! तो महर्षि ने कहा **"स्वाध्यायो ऽध्येतव्यः"** आत्म चिंतन करो। आत्म चिंतन के आधारभूत वेदादि शास्त्रों को पढ़ो।

साभार – वेदपाल सुनीथ (शतपथ सुभाषित पुस्तक से)

ONE FIGHTER CLASS IN CIVILIZED SOCITIES

– Dr. Roop Chandra 'Deepak'
Lucknow (U.P.)
Mob. 9839181690

Let us peep into the medieval Indian history, and specifically the period from 712 to1530 A.D., covering Mohammad-bin-Qasim, Mahmud Ghaznavi, Mohammad Ghori and Babur. All the four invaders successfully defeated the Indian sides, and founded new ruling dynasties as well as new ideology over Indian land. There have been several reasons for our defeat and their victories, and some of them are being given here.

Some Historians have given the view that only Kshatriyas used to fight from Indian side and other Varnas did not care about the battles. They have further alleged that this was one of the main causes of Indian defeats. However, this argument should not be shared by the right thinking people. One can see the modern nations that whenever a war breaks out, only the defence forces fight, and not all citizens. India is an old nation and a civilized society, and there is only one fighter class in the civilized societies. By all means, the caste-system is to blame, but not the original Varna system.

In the early 8th century, the Brahmin Raja Dahir ruled over Sindh. He was not a large-hearted person. He looked down upon the Buddhist and Lower Classes. They could not ride on saddled horses, nor could they carry arms and put on fine clothes. When Mohammad-bin-Qasim attacked Sindh in 712 A.D, they welcomed and joined his camp against their own King. On 20th June 712, during the battle of Rawar, Dahir's elephant fled from the battlefield. Dahir fought bravely but was defeated and killed. His queen then fought and performed jauhar.

Three centuries later, the Brahmin Raja Jai Pal ruled over Punjab with his capital at Wahind. Mahmud Ghaznavi, who took a vow to take an expedition against India every year, attacked him in 1001 A.D., as his second expedition, and defeated him. Jai Pal, who had earlier been defeated by Mahmud's father, took it as humiliation, burnt himself to death, and his son Anand Pal succeeded him. During Mahmud's 6th attack, Anand Pal gave him one of the fiercest battles, but his elephant fled from the battlefield, and Mahmud Ghazanvi came victorious.

Mahmud's 16th attack was on Somnath Temple. On 17th March 1025, Raja Bhim

Dev fled away and Mahmud killed 50000 people with no difficulty. He broke the idol there and plundered our people easily. Mahmud Ghazanvi attacked India 17 times between the years 1000 and 1026. It has been wrongly written about Mohammad Ghori that he attacked 17 times and was defeated each time. Mohammad Ghori attacked several times, a few battles lost and other won. But his famous battles were three, two against Prithviraj and the third against Jai Chand.

Prithviraj Chauhan was a ruler of Delhi and Ajmer. Mohammad Ghori attacked him in 1191 and a battle was fought at the village Tarain. Mohammad Ghori was badly defeated, but he came again in 1192. The second battle was fought at the same place Tarain, but this time Prithviraj was defeated and killed. The story of killing Mohammad Ghori by the 'shabd-vedhi-baan' is false.

Babur's battle against Rana Sangram Singh was fought at Khanwah on 17th March, 1527. The Rajput fought one of the fiercest battles, but at last were defeated. Babur constructed a tower of skulls there.

The description of the above battles does not prove that the Indian sides were defeated because the unfighter classes did not take part in the battles. The main reasons of these defeats and victories have been as follows:

1. The feeling of high and low births made the Indian society weak from within.
2. The Indian kings were busy fighting with one-another for individual supremacy.
3. The native kings were defensive as they felt no hunger or thirst for anything during the battles.
4. The Indians were no inferior fighter, rather more courageous and valiant, but their elephants proved inferior to the foreigner horses, and Babur's artillery made all the difference.
5. The invaders were covetous at Indian money and territory.
6. Like Lord Krishna did to Arjuna, Babur gave the lesson of riches or jannat to his soldiers when they seemed afraid of the Rajputs.
7. According to Dr. V.A. Smith 'the rapidity of the spread of Islam', i.e. the enthusiasm of their religion was the force behind their victory after victory.

If a gang of robbers attack a house-holder, the nearby citizens do not take a battle with them. Rather the Police, i.e. the fighter class comes and takes action. Everybody knows that fighting is a

complex job, and it requires a lot of training courses. Hence each and every person does not deserve to take weapons in his hand. In the present context, it is true that Indian sides fell one after another. It is also true that there were weaknesses in Indian society and administration. But it may not be true that the non-fighters should have done like the fighters did.

The factors letting Indian down, are traced in our history. They should also be analyzed in the modern times as well. The educated class that preaches that the Indian system is outdated and the western one is more scientific, should refrain from alleging this, since the Indian system is ultimately better, more scientific, less harming and excellently peaceful. The defence forces are fortunately the best section of present society. They are in general at their best, and they should continue to maintain this quality.

We, the citizens, have individual and national interests to serve together. This is like a body and its parts. If a hand is wounded, the body is called as wounded. If the hand touches a flower, the body is called as touching the flower. The same thing applies to the two interests. If we serve the individual interests and the national interests together, it needs a discipline, a scientific thought process, and a planned life. We should learn a good lesson from our past, and reorganize ourselves accordingly.

Our Varna-system in its original form is a golden system. We should follow it with the purity of heart, head and tongue. A single pillar cannot be called a building, but four strong pillars certainly make a strong building.

****

शुभ विचार जीवन, समाज और प्रकृति को सर्वोत्तम बनाते हैं

अच्छाइयों में ही शक्ति है। यह शक्ति जीवन को शिखर पर ले जाने की आधार प्रदान करती है। जैसे मधुमक्खी फूलों का पराग चूसकर मीठा शहद इक्ट्ठा कर लेती है उसी तरह से अच्छाई रूपी पराग जहाँ से भी मिले, उसे ग्रहण करने में कभी हिचकिचाना नहीं चाहिए। समुद्र खारा होते हुए भी बरसात की मीठी बूँदों को अपने अन्दर समाहित कर लेता है। छोटे से छोटे व्यक्ति, वस्तु, किताब और उपदेश, जिसमें भी अच्छाई दिखे बिना देरी किए ग्रहण कर लेना चाहिए। हो सकता है, उन अच्छाइयों में कुछ बुराई भी मिली हो। जैसे सोने को शोधित करके, संस्कारित करके स्वर्णकार उसे शुद्ध सोना, जिससे आभूषण बन सके, बना लेता है और उसकी गंदगी निकाल देता है। ऐसी ही दृष्टि अच्छाई ग्रहण करते समय रखनी चाहिए।

जीवन में कर्म की प्रधानता

– पंडित गंगाप्रसाद उपाध्याय

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतँ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।
(यजुर्वेद अध्याय ४०, मंत्र २)

अन्वय :– इह कर्माणि कुर्वन् एव शतं समाः जिजीविषेत्। एवं त्वयिनरे न कर्म लिप्यते। इतः अन्यथा न अस्ति।

अर्थ – (इह) इस संसार में (कर्माणि) कर्मो को (कुर्वन् एव) करते हुये ही मनुष्य (शतं समाः) सौ वर्ष तक (जिजीविषेत्) जीने की इच्छा करे। (एवं) यही एक साधन है जिसके द्वारा (त्वयि नरे) तुझ मनुष्य में कर्म लिप्त न होंगे। (इतः अन्यथा) इससे भिन्न दूसरा कोई मार्ग (न अस्ति) नहीं है।

व्याख्या :– इस मंत्र में 'कर्म' का गौरव और माहात्म्य दिखाया गया है। विस्तृत व्याख्या करने से पहले मुख्य भावना को समझने का यत्न करना चाहिये। जब एक बार भावना हृदयंगम हो जाती है तो अन्य तत्वसम्बन्धी बारीक बातें समझने में सुगमता होती है। मुख्य भावना यह है –''कर्म करो तभी कर्म के बंधनों से छुटकारा मिलेगा।'' कर्म क्या है और कर्म का बन्धन क्या है। इसके लिए एक दृष्टांत पर विचार कीजिये। एक चोर ने चोरी की। चोरी एक कर्म था। शासन की ओर से उसे कारागार मिला। यह कारागार ही कर्म का बंधन है। ''बाधना लक्षणं दुःखम्'' (न्यायदर्शन 1|1|21)। बंधन ही दुख का लक्षण है। कैदी जेल में बंद है। यह ''बंधन'' है। वह नहीं चाहता फिर भी चक्की पीसनी पड़ती है। यह बंधन है। कहीं जा–आ नहीं सकता, यह कर्म का बंधन है। किसी अपने प्यारे से मिल नहीं सकता यही बंधन है। यह सब कर्म के बंधन हुए। कर्म था चोरी। कर्म के बंधन हुए वह कर्म जो बिना इच्छा के जबरदस्ती करने पड़ते हैं। वेद मंत्र कहता है कि इन कर्म के बंधनों से छुटकारा पाने के लिए भी निरंतर कर्म करने चाहिए। उन कर्मों का प्रकार भिन्न होगा। उनकी प्रकृति भी भिन्न होगी। उनके लक्षण भी भिन्न होंगे परन्तु वह होंगे '**कर्म**' ही। कर्म के बंधन बिना कर्म किये नहीं छूट सकते। अनाचार दोष से रोग उत्पन्न होता है। उपचार से रोग दूर होता है। अनाचार भी कर्म था जिसका बंधन हुआ रोग। उपचार भी कर्म है परन्तु भिन्न प्रकार का इसलिए वह 'बंधन' का छुड़ाने वाला है, बंधन को कड़ा करने वाला नहीं।

यह प्रश्न केवल दार्शनिक नहीं। लोक व्यवहार की नित्य चीज है। हम रोज तकदीर और तदबीर की बहस सुनते हैं। तकदीर बंधन है और तदबीर कर्म है। जीवन में हम सैकड़ों बंधन देखते हैं जिनको हमने नहीं बनाया। वह बंधन कहीं से बने बनाए आ गये। जेल के विशाल भवन को चोर ने नहीं बनाया। किसी और शक्ति ने जबरदस्ती उसके ऊपर यह बंधन थोप दिये। वह जकड़ा है। जैसा तकदीर में दिया है होगा, इससे छुटकारा नहीं। कुछ लोग कहते हैं कि खुदा (ईश्वर) जो चाहता है करता है। जिसको चाहता है सन्मार्ग दिखाता है, जिसको चाहता है 'गुमराह' करता है। अल्लाह की मर्जी के विरुद्ध हो भी क्या सकता है। सरकार जबरदस्त है उसने मजबूत जेल खाना बनाकर उसमें चोर को ठूस दिया। कितने ही भागने की तदबीर करो भाग नहीं सकते। इसलिए उस घड़ी की प्रतीक्षा करो जब ईश्वर की ही मर्जी हो और वह बंधन से मुक्त कर दे। ऐसे तकदीर के गुलामों की संख्या ईश्वर भक्तों में सबसे अधिक है। इसका परिणाम है 'आलस्य', क्रियाहीनता। आलस्य के साथ इसी के बहुत से बाल–बच्चे हैं जो अन्य रूपों में प्रकट होते हैं और बंधनों को जकड़ते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो बंधन से छूटने के लिए हाथ–पैर मारते हैं। कोई जेल की दीवार फांदकर भागता है। कोई खिड़कियों की छड़ों को तोड़ देता है। कोई चौकीदारों की आंख में धूल डालता है। इसको आप तदबीर कह सकते हैं। तदबीर के नाम पर सहस्त्रों पातक किये जाते हैं, जिनसे बंधन ढीले नहीं होते अधिक कड़े हो जाते हैं। यह 'तदबीर' थी तो कर्म परन्तु यह सोचकर नहीं किये गये थे कि बंधन के कारणों पर विचार किया जाता। अतः ऐसे कर्म छुटकारे के हेतु सिद्ध नहीं होते ?। कर्म करना मनुष्य का स्वभाव है। कर्म करना संसार

की हर वस्तु का स्वभाव है। मनुष्य भी इसी संसार का एक भाग है। सारी मशीन चलती है तो ऐसा कौन–सा पुर्जा है जो बिना चले रह सके। लेकिन एक काम इच्छा से किया जाता है और एक बिना इच्छा के। जीते तो सभी हैं परन्तु जीकर क्या करेंगे ऐसा तो बहुत कम लोग सोचते हैं। इसलिए वेदमंत्र में एक शब्द आया है 'जिजीविषेत्'। इस रहस्य का सौंदर्य समझने के लिए कुछ संस्कृत व्याकरण का पारिभाषिक ज्ञान आवश्यक है। यह क्रिया है 'विधिलिंङ्'। और साथ ही सन्नन्त भी है। जिनको 'विधलिंङ्' और सन्नन्त के स्वरूप का ज्ञान नहीं उनके लिए मंत्र का महत्व समझने में कठिनाई होगी।

''विधि–निमंत्रण–आमंत्रण–अधीष्टसंप्रशन–प्रार्थनेषु लिंङ्'' (अष्टाध्यायी 3–3–161) यहां 'लिंङ्' लकार विधि के अर्थ में प्रयुक्त होता है अर्थात् जब किसी को आदेश देते हैं कि उसको अमुक काम करना ही चाहिए तो लिंङ् लकार का प्रयोग किया जाता है। अब 'सन्नन्त' (सन् + अन्त) पर विचार कीजिए ''धातोः कर्मणः समान–कतृर्कात् इच्छायां वा'' (अष्टाध्यायी 3–1–6)। यहां इतना जानना पर्याप्त होगा कि जहां 'इच्छा' प्रकट करनी हो वहां क्रिया की धातु में 'सन्' जोड़ देते हैं। इस प्रकार जिजीविषेत् विधिलिंङ् भी है और सन्नन्त भी अर्थात् मनुष्य को **चाहिये** कि जीने की **इच्छा** करे। किस प्रकार ''कर्माणि कुर्वन् एव'' (कर्म करते हुए ही) बिना कर्मों को करने की इच्छा के जीने की इच्छा से कोई लाभ नहीं। यदि कुदरत को यह मंजूर न होता कि हम चलें तो हमको पैर न मिलने चाहिये थे। यदि यह मंजूर न होता कि हम देखें तो आंखें देना निरर्थक था। इसलिए कुदरत ने हमारे शरीर के प्रत्येक अवयव में कुछ ऐसी प्रेरणा दी हुई है कि निरंतर काम करना ही है। भेद केवल इतना ही है कि जो काम हम अपनी इच्छा से करते हैं उसके करने में मजा आता है। लोग नित्य सैर को जाते हैं। यदि सरकार आदेश दे देवे कि तुम को अवश्य ही सैर को जाना पड़ेगा तो सैर भी जान का बवाल हो जाती है। इसलिए वेदमंत्र में उपदेश है कि पहले से ही ऐसी इच्छा करो कि सौ वर्ष जीना है तो निष्क्रिय न होकर अपितु कार्यक्रम बनाकर निरन्तर कर्म करने की योजना भी हो और इच्छा भी। सभी जीते रहना चाहते हैं। उनसे पूछो ''क्यों ? किस काम के लिए ?'' तो इसका उनके पास कोई उत्तर नहीं है। यदि दो वर्ष और जीते रहो तो क्या करोगे ? विचारा नहीं। ''बस खायेंगे, पियेंगे, मौज करेंगे।'' खाना–पीना और मौज करना कर्म तो नहीं यह तो जीवन के साधन मात्र हैं। खाना आसान है, पीना आसान है। परन्तु मौज करना तो आसान नहीं। ('' Eat you can, drink you can. But you cannot be merry'') इसलिए कर्म करने की प्रबल इच्छा होनी चाहिये। जो बुद्धिमत्ता से कर्मों की योजना बनाता है और उस पर चलने का यत्न करता है उसका बंधन छूट जाता है। जेल का कैदी जेल में रहकर जो नियुक्त कर्म करता रहता है वह जेल के बंधन से अवश्य छूट जाता है। कर्मों के करने में तीन प्रकार के दोष आ सकते हैं। कर्तव्य को न करना, अकर्तव्य को करना, कर्तव्य का उल्टा करना। इन तीनों प्रकार के दोष कर्म–बंधन के कारण होते हैं। यदि गेहूं न बोये जायें तो गेहूं पैदा न होगा, उगे हुए गेहूं में अधिक पानी देना, इससे गेहूं उत्पन्न होकर नष्ट हो जायेंगे और गेहूं के स्थान में जौ बो देना, तब भी गेहूं पैदा न होगा । अतः कर्तव्य कर्म के करने पर ही बंधन छूटेगा। गीता में इसी वेद मंत्र पर आधारित एक श्लोक है :–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मां कर्मफल हेतुर्भूः मा ते संगोस्त्वकर्मणः।।

यहां अधिकार का अर्थ है कर्तव्य। अधिकार, अधिकरण यह दोनों समानार्थक हैं। सूत्र ग्रंथों में अधिकार सूत्र वह होते हैं जिनमें अन्य सूत्रों का समावेश होता है। गीता के श्लोक का तात्पर्य है कि कर्म ही मनुष्य के चिंतन क्षेत्र का विषय या अधिकरण है फल नहीं। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि बिना सोचे समझे अर्थात् किस कर्म से क्या फल होगा, किसी काम को कर दिया जाए। कर्म की प्रेरणा ही उसके फल की दृष्टि से होती है। गेहूं बोने वाला पहले देख लेता है कि गेहूं उगाने रूपी फल की प्राप्ति तभी होगी जब गेहूं बोया जायगा। ''स्वर्गकामोयजेत'' अर्थात् स्वर्ग की कामना वाले को यज्ञ करना चाहिए। यहां फल की न अपेक्षा है न अवहेलना। प्रश्न यहां चिंतन का है। जब यह निश्चित हो गया कि अमुक कर्म हमारा कर्तव्य है तो फल का चिन्तन छोड़ देना चाहिए। फल की प्रेरणा आरम्भ में होती है। परन्तु यदि कर्तव्य–पालन के समय मन में फल की उत्कण्ठा बनी

रहेगी तो मन में दुविधा उत्पन्न हो जायगी और कर्तव्य के यथेष्ट पालन में बाधा होगी। कर्म का फल तुम्हारे हाथ में नहीं अतः फल का अपने को हेतु समझना मूर्खता होगी। इसके लिए एक दृष्टांत लीजिए।

आप सरकारी दफ्तर में क्लर्क हैं। आपने पद को स्वीकार ही तब किया जब आपको निश्चित हो गया कि अमुक वेतन मिलेगा। परन्तु जब आप अपने काम में लगे तो 'वेतन' आपके चिन्तन क्षेत्र का विषय नहीं रहा। कार्यालय का कार्य ही एकमात्र चिन्तन का विषय है, वेतन आपके शासक के चिन्तन का विषय है। अतः जो सेवक सेवा का ध्यान छोड़कर हर घड़ी वेतन पर दृष्टि रखता है वह अपने पद का काम न करके अनेक भूलें करता है। क्योंकि वह कर्म का हेतु न होकर कर्मफल का हेतु बन जाता है। गीता में कहा है कि तेरा अकर्मों से सम्पर्क न होना चाहिये। कर्महीनता का नाम भी अकर्म है और उल्टे काम का नाम भी अकर्म है। (अकर्म = अ+कर्म = जो कर्म नहीं उसका करना। या जो कर्म है उसको न करना)।

कुछ लोगों ने इस मंत्र के उल्टे ही अर्थ लगाये हैं। उनका कहना है कि इस मंत्र में जिन कर्मों पर बल दिया गया है वह केवल मूर्खों के लिए है। जो ज्ञानी है उनके लिए तो कर्म की आवश्यकता ही नहीं रहती। श्री शंकराचार्य जी ईशोपनिषद् के भाष्य में लिखते हैं –''अथ इतरस्यानात्मज्ञतया आत्मग्रहणाय अशक्त स्येदमुदपदिशति मंत्रः कुर्वन्नेवेहेति।'' अर्थात् इस मंत्र में केवल उन लोगों के लिए उपदेश है जो अनात्मज्ञ हैं अर्थात् जिनको आत्मज्ञान नहीं हुआ और जो अशक्त अर्थात् सामर्थ्यहीन है। इसका स्पष्ट तात्पर्य यह निकला कि वेद में जहां कहीं कर्मों का गौरव दर्शाया गया है वह केवल मूर्ख अशक्तों के लिए है। जो विज्ञ हैं वह कर्मों की कर्तव्य से ऊपर हैं। इस पर शांकर मत में ज्ञान काण्ड को कर्मकाण्ड से पृथक् कर दिया गया और ब्रह्मज्ञों के मन में कर्म की अवहेलना बैठ गई। इसी मंत्र की व्याख्या के अंत में श्री शांकर भाष्य में एक प्रश्न उठाया है – **कथं पुनरिदमवगम्यते पूर्वेण सन्यासिने ज्ञाननिष्ठोक्ता द्वितीयेन तदशक्तस्य कर्मनिष्ठेति।**

अर्थात् यह कैसे ज्ञात हुआ कि पहले मंत्र ''ईशावास्य'' से संन्यासी की ज्ञाननिष्ठा और दूसरे मंत्र ''कुर्वेन्ने'' से ज्ञान की सामर्थ्य से अशक्त की कर्मनिष्ठा अभिप्रेत है ? वस्तुतः यह प्रश्न तो समीचीन ही था कि वेद के इन दोनों मंत्रों में से किसी शब्द से यह विदित नहीं होता कि पहला मंत्र ज्ञानियों के लिए है और दूसरा अनात्मज्ञ के लिये। परन्तु भाष्यकार ने इसका यह उत्तर दिया है – ''उच्चयते ज्ञान कर्मणाविरोध पर्वत वादकम्पां यथोवतेन स्मरसि किम्।'' क्या तुम को हमारी यह बात याद नहीं रही कि ज्ञान और कर्म का परस्पर विरोध तो पहाड़ के समान अकम्प या अटल है। वस्तुतः यह शंका का समाधान नहीं समाधानाभास मात्र है। ज्ञान और कर्म एक दूसरे के विरोधी नहीं अपितु एक दूसरे के पूरक हैं। ज्ञाननिष्ठ ही कर्मनिष्ठ हो सकता है। और ज्ञान निष्ठ ही ''माते संगोऽस्त्वकर्मणः'' का पालन कर सकता है। गीता के भक्त भी तो यही कहते हैं कि भगवान कृष्ण ने अर्जुन को कर्म की भावना से मुक्त करने और कर्मनिष्ठ बनाने के लिए गीता का उपदेश किया था। जिनमें कर्म की निष्ठा है वह अज्ञानी नहीं है। जो ज्ञान से शून्य हैं वे कर्मनिष्ठ कैसे होंगे। भगवान् ने हमारे शरीर में ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां दोनों ही दी हैं। वे एक दूसरे के पूरक हैं विरोधी नहीं और न उनका विरोध पर्वत के समान अटल है। जब ज्ञान और कर्म में पर्वत के समान अकम्प विरोध हो उठता है और मस्तिष्क तथा हाथ–पैर एक दूसरे के विरोधी हो जाते हैं तो इसको पागलपन की दशा ही कहते हैं। ज्ञान और कर्मेन्द्रियों का परस्पर विरोध केवल पागलों में मिलता है, ज्ञानियों में नहीं। इस प्रकार के निराधार और काल्पनिक भाष्य वैदिक संस्कृति के ह्रास के कारण ही सिद्ध हुये हैं। यह वेद मंत्रों के आशय को न समझने अथवा कल्पित भावनाओं के अध्यारोप के कारण हुआ है। वस्तुतः यह वेदमंत्र कर्म के गौरव को बताता है और स्पष्ट शब्दों में कहता है कि यथेष्ट कर्मों की इच्छा करके जीना और उन कर्मों का यथाविधि पालन करना सब कर्म के बन्धनों के छुटकारे का साधन होगा।

यहां एक बात स्पष्ट कर देनी चाहिये। 'कर्मकाण्ड' के अर्थों में भी बहुत कुछ विकार हुआ है । श्री शंकर स्वामी के समय में कर्मकाण्ड का केवल यही अर्थ लिया जाता था कि यज्ञों के विषय में प्रचलित कुछ क्रियाएं करना, जैसे पात्र साफ करना, वेदी बनाना, अमुक मंत्र पढ़कर चावल निकालना या पकाना या

अमुक मंत्र पढ़कर अमुक आहुति देना। यह कर्मकाण्ड का संभव है कि किसी अंश तक बाह्य रूप रहा हो परन्तु यह वास्तविक कर्मकाण्ड नहीं है केवल हल को एक मंत्र पढ़कर उठा लेने का नाम कृषि कर्म नहीं है और न व्यापार–सम्बन्धी किसी मंत्र के पढ़ देने का नाम व्यापार है। कितनी समिधा कितनी बड़ी हो या कर्मकाण्ड नहीं। सम्भव है कि वेदानुयायी को ऐसे निरर्थक कृत्यों से बचाने के लिए शंकर स्वामी ने इस प्रकार के तर्कों का प्रयोग किया हो क्योंकि उस युग के कुमारिल भट्ट या मंडन मिश्र आदि ऐसे ही कर्मकाण्ड के प्रचारक थे। और महात्मा बुद्ध आदि ने इसी जाल से मनुष्यों को सुरक्षित रखने के लिए वेदों का विरोध किया था। परन्तु यह तो कल्पित उपचार था जिसने एक रोग दूर करने के लिए दूसरा रोग उत्पन्न कर दिया। कर्म के जाल से छूटने के प्रयत्न में लोगों को नास्तिक बना दिया। कर्मकाण्ड के जाल से छूटे तो मायाजाल के शिकार हो गये । इससे कर्म का बंधन तो नहीं छूटा। कर्म (वैदिक कर्म) अवश्य ही छूट गये। देश निरुद्यम हो गया। कर्म और ज्ञान के बीच अकम्प पर्वत खड़ा हो गया। परन्तु यह पर्वत भाष्यकारों की कल्पना का फल है। कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड के बीच से इस व्यवधान को हटाने की आवश्यकता है और यह बात केवल यथेष्ट स्वाध्याय से ही पूरी हो सकती है।**************************

पण्डित कौन ?

जिस को आत्मज्ञान सम्यक् आरम्भ अर्थात् जो निकम्मा, आलसी कभी न रहे। सुख–दुःख, हानि–लाभ, मानापमान, निन्दा–स्तुति में हर्ष शोक कभी न करे। धर्म ही में नित्य निश्चित रहे। जिस के मन को उत्तम–उत्तम पदार्थ अर्थात् विषय सम्बन्धी वस्तु आकर्षण न कर सकें वही पण्डित कहाता है।।१।।

सदा धर्मयुक्त कर्मों का सेवन, अधर्मयुक्त कामों का त्याग, ईश्वर, वेद, सत्याचार की निन्दा न करनेहारा, ईश्वर आदि में अत्यन्त श्रद्धालु हो। वही पण्डित का कर्तव्याकर्तव्य कर्म है।।२।।

जो कठिन विषय को भी शीघ्र जान सके। बहुत कालपर्यन्त शास्त्रें को पढ़े सुने और विचारे। जो कुछ जाने उस को परोपकार में प्रयुक्त करे। अपने स्वार्थ के लिये कोई काम न करे ; विना पूछे वा विना योग्य समय जाने दूसरे के अर्थ में सम्मति न दे। वही प्रथम प्रज्ञान पण्डित को होना चाहिये।।३।।

जो प्राप्ति के अयोग्य की इच्छा कभी न करेय नष्ट हुए पदार्थ पर शोक न करे, आपत्काल में मोह को न प्राप्त अर्थात् व्याकुल न हो वही बुद्धिमान् पण्डित है।।४।।

जिस की वाणी सब विद्याओं और प्रश्नोत्तरों के करने में अतिनिपुण, विचित्र शास्त्रें के प्रकरणों का वक्ताय यथायोग्य तर्क और स्मृतिमान्य ग्रन्थों के यथार्थ अर्थ का शीघ्र वक्ता हो वही पण्डित कहाता है।।५।।

जिस की प्रज्ञा सुने हुए सत्य अर्थ के अनुकूल और जिस का श्रवण बुद्धि के अनुसार हो, जो कभी आर्य अर्थात् श्रेष्ठ धार्मिक पुरुषों की मर्यादा का छेदन न करे वही पण्डित संज्ञा को प्राप्त होते हैं।।६।।

– सत्यार्थ प्रकाश चतुर्थ समुल्लास

श्रेष्ठ कामना करें

– महात्मा चैतन्यस्वामी
चलभाषः 09418053092

काम शब्द का प्रयोग वेदादि शास्त्रों में व्यक्ति की अनेकशः कामनाओं के रूप में किया गया है। वास्तव में सुख–दुःख और जन्म–मरण का यह सारा पसारा कामनाओं के कारण ही है। कामना, इच्छा, प्रयोजन, सहवास, वासना और स्नेह आदि ये सभी काम के ही पर्यायवाची हैं। धन–वैभव, सौन्दर्य, सुन्दर स्त्री, आज्ञाकारी पुत्र आदि व्यक्ति की अनेक कामनाएं हो सकती हैं। पुरूष और स्त्री के शारीरिक आकर्षण को भी काम की संज्ञा दी गई है। स्वर्ग, मुक्ति एवं मोक्ष की इच्छा भी कामना ही है। यदि देखा जाए तो व्यक्ति की कामनाओं को किसी सीमा में नहीं बान्धा जा सकता है और व्यक्ति बिना कामनाओं के रह भी नहीं सकता है। जिस प्रकार मोक्ष का सहायक धर्म है उसी प्रकार अर्थ का सहायक काम ही है। शरीर से सम्बन्ध रखने वाला है अर्थ और मन से सम्बन्ध रखने वाला काम है। आजकल मुख्यतः काम का अर्थ स्त्री या पुरूष–भोग ही किया जाता है मगर वास्तव में काम का अर्थ इतना सीमित नहीं है। वेद में कहा गया है–

कामस्तदग्रे समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं
यदासीत्।
स काम कामेन बृहता सयोनी रायस्पोषं
यजमानाय धेहि।।
(अथर्ववेद 19–52–1)

इस सृष्टि के आरम्भ में (प्रलय की समाप्ति पर) काम सिसृक्षा हुआ। प्रभु ने सृष्टि को उत्पन्न करने की कामना की (**सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेय**) जो काम मन का सर्वमुख्य था। काम से ही सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माण होता है, मानो यह काम ही सृष्टि का बीज हो। हे काम! तू उस महान् काम–कान्त प्रभु के साथ समान निवास वाला होता हुआ यज्ञशील पुरूष के लिए धन की पुष्टि को स्थापित कर। हृदय में प्रभु के साथ निवास वाला काम पवित्र ही होता है।(**धर्माविरूद्धः कामाऽस्मि भूतेषु भरतर्षभ**)यह धर्माविरूद्ध काम हम यज्ञशीलों को धन का पोषण प्राप्त कराए। उपनिषदों के अनुसार परमात्मा ने सृष्टि बनाने की इच्छा की–**तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेति.....**(छान्दो06–2–3)उस 'सत' रूप चेतन–शक्ति ने इच्छा की कि मैं बहुत हो जाऊॅं, पैदा हो जाऊॅं! उसने तेज को रचा। तेज ने इच्छा की कि मैं बहुत हो जाऊॅं, पैदा हो जाऊॅं....**स्वभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।।**(श्वेता0) उस परमात्मा में ज्ञान, बल व क्रिया ये तीनों स्वाभाविक हैं....**सोऽकामयत।बहु स्यां प्रजायेयेति...** (तै02–6–1) उसने कामना की कि मैं एक से अनेक हो जाऊॅं, प्रजनित हो जाऊॅं....**स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति।।**(ऐते01–1–1) उस परमात्मा ने ईक्षण किया, सब–कुछ बारीकी से विचार ही विचार में देख लिया कि लोकों का अर्थात् नाना–विध सृष्टि का किस–किस रूप में सर्जन करूॅं। ऋग्वेद(10–129–4) में आया है–**कामस्तदग्रे समवर्त्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।।** इसका अभिप्राय है कि जगत्सर्जन के पूर्व काम अर्थात् कामना या इच्छा परमात्मा में पैदा हुई, यह कामना सृष्टि की उत्पत्ति के लिए मानसिक वीर्य था... वेद के बहुत से मन्त्रों में तो उस परमात्मा को ही 'काम' अर्थात् कमनीय पुकारकर मलों को दूर करने, ज्ञान प्राप्त करने, दान करने, भक्ति करने तथा शत्रुओं को नष्ट करने आदि की अनेक प्रार्थनाएं की गई हैं। साथ ही उन मन्त्रों में इच्छा–शक्ति का सामर्थ्य भी बताया है –

जहि त्वं काम मम ये सपत्ना अन्धा
तमांस्यव पादयैनान्।
निरिन्द्रिया अरसः सन्तु सर्वे मा ते जीविषुः
कतमच्चनाहः।।
(अथर्ववेद 09–2–10)

हे(काम) इच्छा–शक्ति! मेरे जो शत्रु हैं उन को तू मार डाल, इनको गाढ़ अन्धकार में नीचे गिरा दे। वे सब इन्द्रियशून्य तथा नीरस निर्वीर्य हो जावें और किसी एक दिन भी न जीवें। अथर्ववेद के नौवें काण्ड का यह दूसरा सूक्त पूरा ही इच्छा–शक्ति द्वारा बाहरी एवं भीतरी शत्रुओं का संहार करने से सम्बन्धित है। वेद–स्वाध्याय आदि के द्वारा हमें अपनी इच्छा–शक्ति एवं संकल्प–शक्ति को उद्बुध करके अपने समस्त

शत्रुओं का नाश करना चाहिए।प्रबल इच्छा–शक्ति द्वारा ही हम इनका संहार कर सकते हैं।

वास्तव में कामना बुरी नहीं है बल्कि जीवन में आगे बढ़ने के लिए कामना अर्थात् इच्छा का होना अति आवश्यक है। इच्छा–शक्ति से ही व्यक्ति में पराक्रम और साहस आता है। इच्छा से ही व्यक्ति संकल्पशील होकर अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में समर्थ होता है। यजुर्वेद(20–23) में आया है –'**विभून् कामान् व्यश्नवै।**' अर्थात् मैं व्यापक कामनाओं को प्राप्त होउुं। अपना, परिवार का, समाज का, देश का या समूचे संसार का हित चाहना यह कामना ही तो है फिर कामना व्यक्ति क्यों न करे? अथर्ववेद में भी काम की सामर्थ्य एवं शक्ति के सम्बन्ध में कहा गया है –

त्वं काम सहसासि प्रतिष्ठितो विभुर्विभावा सख आ सखीयते।
त्वमुग्रः पृतनासु सासहिः सह ओजो यजमानस्य धेहि।।
दूराच्चकमानाय प्रतिपाणायाक्षये। आस्मा अश्रृण्वन्नाशाः कामेनाजनयन्त्स्व :।।
कामेन मा काम आगन्हृदयाद्धृदयं परि।
यदमीषामदो मनस्तदैतूप मामिह।।
यत्काम कामयमाना इदं कृण्मसि ते हविः।
तन्नः सर्वं समृध्यतामथैतस्य हविषो वीहि स्वाहा।।

(अथर्ववेद 19–51–2 से 5)

हे काम! तू शत्रुधर्षण के साथ हममें प्रतिष्ठित हुआ है। समर्थ और विशिष्ट दीप्तिवाला तू है। हे मित्रवत् हितकारी काम। सखिवत् आचरण करने वाले के लिए–प्रभु–मित्र बनने की कामना के लिए तू शक्ति देने वाला व दीप्ति प्राप्त करानेवाला होता है, तू प्रबल है। शत्रु संग्रामों में शत्रुओं का मर्षण करने वाला है। तू यज्ञशील पुरूष के लिए शत्रु–धर्षण समर्थ बल धारण कर। दूरविषयक अत्यन्त दुर्लभ फल को चाहने वाले इस मेरे लिए सर्वतः रक्षण के लिए और क्षयराहित्य के निमित्त सब दिशाओं में फल देने के लिए स्वीकार किया है। केवल स्वीकार ही नहीं किया अपितु अभिमत फल–विषयक कामना के द्वारा सुख को उत्पन्न किया है। इच्छा से, इच्छा मुझे प्राप्त हुई है। वह इच्छा जो कि एक हृदय से दूसरे हृदय के प्रति हुआ करती है। दूसरा व्यक्ति मुझे चाहता है तो मैं भी उसे चाहने वाला बनता हूँ। उसकी कामना ने मुझमें भी कामना को पैदा किया है। वस्तुतः प्रेम पारस्परिक ही हुआ करता है। जो उनका–मुझसे दूर स्थिति ज्ञानियों का मुझसे दूर गया हुआ मन है, वह मुझे यहां समीपता से प्राप्त हो। मैं ज्ञानियों का प्रिय बनॅूं। हे काम! जिस फल को चाहते हुए हम तेरी इस हवि को करते हैं, अर्थात् जिस फल की कामना से हम यज्ञ करते हैं–हमारी वह सब इच्छा समृद्ध हो–फूले–फले। अब हे काम! इस दी हुई हवि का तू भक्षण कर। यह हवि तेरे लिए सुहुत हो। हम जब किसी कामना से यज्ञ करें तब उसे सम्यक् करने वाले बनें....************************

केयूराणि न भूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्जवला,
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्धजाः।
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते,
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्।।
(भर्तृहरिकृत– नीतिशतक, श्लोक ७६)

भावार्थ– चन्द्रमा के समान चमचमाते हुए हीरे–मोती से बने आभूषण, जो हाथों में और गले में धारण किए जाते हैं, वे मनुष्यों को शोभायमान नहीं करते, और न ही स्नान, तैल, इत्र, पुष्पादि से किया हुआ श्रृंगार तथा सजे–संवारे हुए बाल मनुष्य को भूषित करते हैं। मनुष्य का सच्चा आभूषण तो शुद्ध सरल, सत्य, सुमधुर वाणी ही है। अन्य सभी आभूषण तो धीरे–धीरे कालक्रम से नष्ट हो जाते हैं। परन्तु वाणी रूपी सच्चा आभूषण तो सदैव जगमगाता रहता है।

लोकसंग्रह और साहित्य

– डॉ0 प्रमोद कुमार अग्रवाल

वेदों का उद्घोष है कि विद्वान लोग अपनी वाणी को दोषों से पृथक करके, मधुरिता से पूरित करके, कल्याणकारी वाणी को मन से शुद्ध एवं प्रेम से युक्त करके प्रयुक्त करते हैं।

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्रधीरा

(ऋग्वेद 10/71/12)

भारत की धरती से उपजा ज्ञान स्त्रोत वेद सब समय सर्वकल्याण की कामना करता है। साहित्य में भी 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' होना चाहिए। शिव की भांति साहित्यकार समाज में व्याप्त विष को पीकर समाज के लिए अमृत लौटाता है। साहित्य केवल समाज का दर्पण ही नहीं है, वह व्यक्ति का मित्र, दार्शनिक तथा मार्गदर्शक भी है। साहित्य एक मित्र की भांति व्यक्ति के मन में पैठ बनाकर उसको सलाह देता है ताकि व्यक्ति कर्मयज्ञ में संलग्न होकर इस धरती तथा समाज को और सुन्दर बनाये। आजकल साहित्य में यथार्थवाद के नाम पर पाठक को जो परोसा जा रहा है, उससे उसके मन की भाव–ग्रन्थियाँ और जटिल हो रही हैं तथा वह विभ्रान्त हो रहा है। शिल्प सौष्ठव के नाम पर उसे विचारों की अंधेरी पगडण्डियों में धकेला जा रहा है, जहां वह अपने जीवन का उद्देश्य तो छोड़ ही दीजिए, अपनी छोटी–छोटी समस्याओं का समाधान नहीं खोज पा रहा है। भाषा, छन्द, व्याकरण तथा कला–पक्ष के नाम पर उसके लिए साहित्य की कोई उपादेयता नहीं बल्कि साहित्य के सम्मुखीन होने पर उसका मन–मस्तिष्क और बोझिल हो जाता है।

यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि साहित्य का उद्देश्य लोकसंग्रह तथा लोकरंजन दोनों हैं पर समय की आवश्यकतानुसार दोनों पक्षों में उतार–चढ़ाव होता रहता है। दोनों में समन्वय आवश्यक है। जब समाज को आवश्यकता थी तो कबीर, नानक, तुलसी, जैसे समाज सुधारक साहित्यकार आगे आये। जब देश में शांति तथा समृद्धि विराजमान थी, तो श्रृंगाररसपरक रीतिकालीन साहित्य का निर्माण हुआ तथा उसके पश्चात् प्रकृति पर आधारित छायावाद तथा जीवन–जगत् के रहस्य खोजते हुए रहस्यवाद साहित्य जब लोकनायकों ने दृष्टिगोचर किया कि देशीय शासकों के तथा विदेशी शासकों के हाथों जनता का शोषण हो रहा था, तो साहित्य की धारा प्रगतिशीलता की ओर मुड़ गई।

स्वाधीनता आन्दोलन से साहित्य स्वयं को पृथक न रख सका। गांधी जी के असहयोग आन्दोलन तथा क्रान्तिकारियों द्वारा हिंसक क्रान्ति की कार्यवाहियों से जनमानस में अभूतपूर्व चेतना जाग्रत हुई। अपवादों को छोड़कर सभी साहित्यकार भी भारत के स्वातन्त्र्य आन्दोलन में अपना सक्रिय योगदान देने के लिए कलम का हथियार लेकर कूद पड़े। कलम का हथियार किसी भी प्रकार के परम्परागत हथियार से कम प्रभावशाली नहीं होता बल्कि कलम का हथियार तो सुदूर में बैठे उस शिकार को भी आन्दोलित करता है जिस पर परम्परागत हथियार नहीं पहुंच सकता। एक ओर साहित्य में ब्रिटिश शासन के शोषण के विरुद्ध जनजाग्रति उत्पन्न करने का प्रयास किया गया, वहीं दूसरी ओर लोगों की जनशक्ति को उद्भूत किया गया कि उनका भूतकाल स्वर्णिम था तथा वे किसी भी जाति या मूलवंश से कम नहीं है। मैथिलीशरण गुप्त की कृति 'भारत–भारती' ने वही कार्य किया जो क्रान्तिकारी चन्द्रशेखर आजाद के अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष ने। स्वामी सहजानन्द सरस्वती के नेतृत्व में रामचरितमानस की चौपाई 'राम निकाई रावरी है सब ही का नीक' को लेकर पूर्वी उत्तर प्रदेश में सामान्य जनता, कृषक, भूमिहीन तथा बटाईदार ब्रिटिशराज के अन्याय के विरुद्ध एकजुट होकर उठ खड़े हुए। स्वयं गोस्वामी तुलसीदास ने माना कि उनकी कृति गंगा की भांति जनकल्याण करती रहेगी–कीरति भनित भूति भलिसोई। यही कार्य गद्य साहित्य के क्षेत्र में मुंशी प्रेमचन्द ने किया और वे

सार्वकालिक हो गये। कार्लमार्क्स ने समाज कल्याण में साहित्य के अवदान को कम करके नहीं आंका। कार्लमार्क्स के अनुसार–'रचनाकार पाठक के पास अपने विचार और पाण्डित्यपूर्ण दर्शन के जरिये नहीं बल्कि उन विविधपूर्ण बिम्बों के जरिये पहुंचता है, जो अपनी कथात्मक अभिव्यंजनाओं से पाठक की चेतना और अनुभूतियों को प्रभावित करते हैं।'

वर्तमान युग समृद्धि और शांति का संक्रमणकाल है। सूचना प्रौद्योगिकी ने सभी कुछ व्यक्ति के घर की चौखट पर पहुंचा दिया है। फलस्वरुप लोकरंजन साहित्य ही अधिक लोकप्रिय है पर साहित्यकार मानव–मन के अवसाद, समकालीन विकृतियों तथा निराशावाद को दृष्टिगोचर कर रहा है तथा मानव–मानस को आनन्दमय बनाने के लिए नई रचनाओं तथा नये बिम्बों के साथ प्रस्तुत हो रहा है।

अधुतनातनकाल में यदि साहित्यकार को लोकसंग्रह भी करना है तो उसे पाठक के कंधे पर मित्र, दार्शनिक तथा मार्गदर्शक की भांति हाथ रखना होगा तभी वह उसकी बात सुनेगा। साहित्य का परम उद्देश्य लोकसंग्रह ही है, उसके प्रणयन के काल एवं देश के अनुसार तौर–तरीके, शैली तथा वैचारिक धरातल परिवर्तित होते रहते हैं। ****************

आर्ष क्रान्ति पत्रिका के लिए आर्य लेखक बन्धु अपनी सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ भेंजें।

नहीं कोई मिलता

महब्बत का तुम्हारे शहर में परचम नहीं मिलता
सुकूँ से भीग जाए दिल कोई हमदम नहीं मिलता

झुकाएँ सर कहाँ अपना इबादत भी करें किसकी
जिसे भी देखते हैं वो खुदा से कम नहीं मिलता

भला हम अपने जख्मों को दिखाएँ तो कहाँ जा कर
यहाँ निश्तर है हाथों में वहाँ मरहम नहीं मिलता

कहाँ तक आप दौडेंगे लिए हसरत बलंदी की
परिन्दा भी उड़ानों में मियाँ हरदम नहीं मिलता

ये खुदगर्जी की रिश्तों पर हुई कैसी अजब दस्तक
फकत मिलता है मैं ही मैं किसी में हम नहीं मिलता

वही बारिश वही छप्पर वही फाके हैं जाने जॉ
विरासत में मिला है जो कभी मुबहम नहीं मिलता

बड़े हैं पेचोख़म 'भूषण' यहाँ मिलने–मिलाने में
कभी तो मैं नहीं मिलता कभी आलम नहीं मिलता

– भारत भूषण आर्य
चलभाषः 9871096526

प्रदूषणों से घट रही है औसत आयु

वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण और मृदा प्रदूषण से पैदा होने वाली समस्याओं से लोग वाकिफ हैं। इन प्रदूषणों को कम करने की कवायदें भी विश्व स्तर पर जारी हैं। लेकिन प्रकाश प्रदूषण से होने वाली समस्याओं के बारे में लोग नहीं जानते। इसलिए इस खतरे के प्रति लोग आंख मूंदे हुए हैं। दक्षिण कोरिया स्थित सियोल नेशनल युनिवर्सिटी में एसोसिएट प्रोफेसर क्यॉग–बोक मिन के मुताबिक रात में आउटडोर और कृतिम प्रकाश की तीव्रता का नींद की दवाओं से गहरा रिश्ता है। अध्ययन के मुताबिक रात में घर के बाहर तेज प्रकाश का असर नींद पर पड़ता है, इससे अनिद्रा की समस्या बढ़ रही है। इसलिए लोग नींद के लिए दवाओं का सेवन करते हैं। इससे लोगों में रोग प्रतिरोधक क्षमता में जबरदस्त कमी देखी जा रही है और लोगों की औसत आयु में कमी आ रही है।

प्रकाश प्रदूषण एक ऐसी नई समस्या है जिसका समाधान निकट भविष्य में संभव नहीं दिखाई देता, बल्कि इस समस्या का दिनोदिन बढ़ने के आसार हैं। इसकी वजह यह है कि लगातार नए–नए शहर बसाए जा रहे हैं। रोड लाइटें और पार्क लाइटें शहरों की अहम जरूरत हैं। चकाचौंध कर देने वाली ये लाइटें सेहत पर किस तरह और कितनी असर डाल रही हैं, इस पर नगरपालिका या सरकार को सोचने का वक्त नहीं है। आमतौर पर लोग इस बाबत सोचते ही नहीं हैं। लोगों को यह भी नहीं मालुम की आंखों को चौधिया देने वाली ये लाइटें उनकी उम्र को कम करने की वजह बन रही हैं। लोगों के लिए तो पार्क, स्ट्रीट और रोड लाइट का होना विकास का पैमाना है। लेकिन इस तथाकथित विकास के पैमाने में उनकी जिंदगी का पैमाना गड़बड़ा रहा है, किसी को नहीं मालुम। यह हैरत में डालने वाली बात है कि उच्च शिक्षित कहे जाने वाले लोग भी इस नई समस्या के प्रति वाकिफ व संवेदनशील नहीं लगते। युनिवर्सिटी ऑफ शिकागो के एनर्जी पॉलिसी इंस्टीट्यूट के निदेशक व अर्थशास्त्री प्रो. माइकल ग्रीनस्टोन के मुताबिक वैश्विक आबादी का 50 फीसदी या 5.5 अरब लोग ऐसे क्षेत्रों में रहते हैं जहां प्रदूषण की समस्या डब्ल्यूएचओ द्वारा निर्धारित सीमा को पार कर गया है। गौरतलब है भारत और चीन में दुनिया की 36 प्रतिशत आबादी रहती है। दोनों देशों में वायु, ध्वनि, जल, मृदा और प्रकाश प्रदूषण की समस्या विकराल रूप धारण कर चुकी है। एक सर्वेक्षण के मुताबिक इन दोनों देशों में रहने वाले लोगों की औसत उम्र में 73 फीसदी की कमी आई है। उड़ती धूल से जहां सिर दर्द, बुखार, नेत्ररोग, चर्मरोग, श्वासरोग व एलर्जी जैसी समस्याएं विकट होती जा रही हैं वहीं पर प्रकाश प्रदूषण के कारण अनिद्रा, नेत्ररोग, हृदयरोग और मानसिक रोग लगातार बढ़ते जा रहे हैं। जिस प्राकृतिक प्रकाश को जिंदगी का कभी सहचर माना जाता था वह जब कृतिम रूप से हमारी जिंदगी का हिस्सा बनता है तो वह हमारे लिए समस्या पैदा करने वाला बन जाता है, नए शोध और सर्वेक्षण तो यही कह रहे हैं।

इसी तरह मृदा प्रदूषण जिसमें उड़ती धूल की समस्या सबसे ज्यादा है से सब्जियों, फलों, खाद्यान्नों और दूसरी खेत में पैदा होने वाली वस्तुएं प्रदूषित हो रही हैं। ऐसी वस्तुओं के सेवन से पेट, मस्तिष्क, त्वचा, आँख, किडनी, लीवर पर अत्यंत घातक असर पड़ रहा है। असमय में समाज के हर आयु वर्ग का व्यक्ति बीमारी से ग्रस्त होने लगा है। वैज्ञानिकों के मुताबिक हवा में प्रदूषण और आद्रता बढ़ने से हवा में 2.5 पीएम के सूक्ष्म कण, ओजोन, नाइट्रेट, सल्फेट व कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा ज्यादा है। प्रदूषण और आद्रता से ग्राउंड लेबल पर ओजोन का स्तर बढ़ रहा है। इससे नाक और सांस की नलिकाओं में सूजन और संक्रमण की शिकायत बढ़ रही है। जिससे लोग खांसते–खांसते परेशान हैं। प्रदूषण व आद्रता बढ़ने से फोटो केमिकल स्मॉग भी बन रहा है। प्रो. जे. वी सिंह के मुताबिक फोटो केमिकल स्मॉग में निचले स्तह पर ओजोन की मात्रा लगातार बढ़ रही है। यह ओजोन

नाक और सांस की नलिकाओं के म्यूकोसा (द्रव्य पदार्थ) को नुकसान पहुँचा रही है। इससे आम लोगों में सांस की नलिकाओं में सूजन व संक्रमण हो रहा है। प्रदूषण से अस्थमा और क्रानिक ऑब्स ट्रक्टिव पल्मोनरी डिजीज (सीओपीडी) से पीड़ित मरीजों की सांस उखड़ने लगी है।

पर्यावरण प्रदूषण की समस्या जिस तरह से विकराल रूप धारण कर रही है उससे लगता है कि कुछ ही सालों में विकासशील देशों में रहने वाले लोगों की औसत उम्र में और भी कमी आएगी। आमतौर पर शहरों में रहने वालों को प्रदूषण की समस्या से दो–चार होना पड़ता है, लेकिन अब गांवों और छोटे कस्बों में भी प्रदूषण की समस्या से लोगों को तरह–तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। भारत के अनेक प्रदेशों के किसानों द्वारा पराली जलाने से वायु प्रदूषण, डीजे के शोर से ध्वनि प्रदूषण और उडती धूल के कणों से पर्यावरण पर प्रतिकूल असर देखने को मिल रहा है। यही वजह है गांवों में रहने वाले लोग उन बीमारियों के चपेट में आते जा रहे हैं जो आमतौर पर शहरों की मानी जाती थीं। पराली जलाने से हवा व सेहत तो चौपट हो ही रही है जमीन की उर्वरा–शक्ति में जबरदस्त कमी देखी जा रही है। सर्वेक्षण के मुताबिक भूमि की 80 फीसद तक सल्फर नाइट्रोजन और 20 फीसद अन्य पोषक तत्वों की कमी आई है। इसके अलावा जमीन में मौजूद 'मित्रकीट' नष्ट हो रहे हैं। कीटों का प्रकोप गांवों में बहुत तेजी के साथ बढ़ रहा है व भूमि की जल धारण की क्षमता में कमी आ रही है। जिस पर गौर करने की जरूरत है। शहरों में घरों और कारखानों का कचरा और गांवों में पराली दोनों पर्यावरण की बर्बाद कर रहे हैं। आशा की जानी चाहिए कि आम जन और सरकारें इस तरफ गम्भीरता से ध्यान देंगे। जिससे प्रदूषण की बढ़ती समस्याओं पर काबू पाया जा सके। ************************

उद्यानं ते पुरुष नावयानम्।। (अथर्ववेद ८.१.६)

हे पुरुष! तेरा विकास हो ह्रास नहीं।

पर्यावरण

हर दिशा ओर बिखरी प्रकृति
प्रभुवर की माया का विलास,
आवरण ब्रह्म की आकृति का,
यह ही पर्यावरणी विकास।

जल, अनल, अनिल, भू–पांच तत्व–
ये ही हैं प्रकृति के साधन,
इनकी शुध्दता, स्वच्छता ही–
भौतिकजग को करती पावन।

वन, वनस्पति ,तरु, लता, गुल्म,
हरिताभा का प्रवाह पावन,
जीवन रस भरता प्राणों में,
सब जग हो जाता मनभावन।

रँग–रूप भरे अगणित सुन्दर
तिर्यक, पशु, पक्षी अरु मानव,
हो उठती सारी संसृति नव
मदमय वातावरणी अर्णव।

हे मूढ़ मनुज कुछ ध्यान करो,
जग परावरण का मान करो,
इसको सर्वदा रखो विशुध्द,
इन तत्वों का सम्मान करो।

– ज्ञान चंद्र (गुडगांव)
चलभाषः 9810052659

बॅ. सावरकरांचे डॉ. आंबेडकरांना आमंत्रण

श्रीयुत डॉ. आंबेडकर यांसी

महाशय,

गेली पाच सहा वर्षे रत्नागिरी नगरात पोथीजात जातिभेदोच्छेदक आंदोलन बच्याच मोठ्या प्रमाणात चालू आहे. आपल्या हिंदू धर्माच्या नि हिंदू राष्ट्र –ाच्या मुळासच लागलेली ही जन्मजात म्हणविणात्या पण पोथीजात असणान्या जातिभेदाची कीड मारल्यावाचून तो संघटित नि सरळ होऊन आजच्या जीवनकलहात टिकाव धरू शकणार नाही. याविषयी मलाही मुळीच शंका वाटत नाही. आपत्याप्रमाणेच नि आपल्या इतक्याच स्पष्ट शब्दांत मी अस्पश्यता प्रभृति अन्याय्य, अधर्म्य नि आत्मघातक अशा अनेक रूढींची ब्याद पसरविणान्या या जन्मजात जातिभेदास निषेधित आलो आहे. सोबत माझे दोन तीन लेखही धाडीत आहे. वेळ झाल्यास पाहावे.

परंतु हे पत्र मी जातिभेदाविषयी शाब्दिक निषेध वा चर्चा करण्यासाठी घालीत नाही. या पिढीत हा जातिभेद मोडण्यासाठी हिंदू समाज प्रत्यक्ष कार्य असे कोणते करू इच्छितो याची काही सक्रिय हमी, प्रत्यक्ष पुरावा, मनोवृत्ती पालटण्याची निर्विवाद साक्ष आपणास हवी आहे, असे आपण मसूरकर महाराजांशी झालेल्या भेटीत बोलल्याचे समजते. अस्पृश्यता व जातिभेद मोडण्याचे दायीत्व (Responsibility) स्पृश्यांवच काय ते नाही. अस्पृश्यांतही अस्पृश्यता नि जातिभेद यांचे प्रस्थ स्पृश्याइतकेच आहे. भट नि भंगी जातिभेदाच्या पापाचे भागीदार असून मनोवृत्ति पालटण्याची साक्ष दोघांनीही एकमेकांना दिली पाहिजे. दोघांनी मिळून पान निस्तारिले पाहिजे. दोष सगळयांचा, प्रमाण काय ते थोडेफार अर्थात जातिभेद मोडण्याचे प्रत्यक्ष कार्य तिथेच उत्कटपणे नि यथार्थपणे झाले असे म्हणता येईल की जिथे ब्राह्मण मराठेच महाराबरोबर जेबत नाहीत तर महारही भंग्याबरोबर जेवतो. जात्यहकाराच्या प्रपीडक (Tyranical) वृत्तीपासून महारही इतका मुक्त नाही की त्यांने केवळ स्पृश्य वर्गापासूनच काय ती मनोवृत्ती पालटण्याविषयी सक्रिय पुरावा मानण्याचा निरपराधी अधिकार गाजवू पाहावा हे माइया प्रमाणेच आपल्याही अनुभवास पदोपदी आलेले असेल.

नुसती शाब्दिक सहानुभूती नको. आता सक्रिय हमी काय देता ते रोखठोक ठरवून काय ते करून दाखवा? हे आपलेमागणे न्यायच नव्हे तर उपयुक्त आहे. मीही गेल्या पाच सहा वर्षापासून रोखठोक हेच काय ते कार्य हे सूत्र हिंदू राष्ट्र–पुढे इतर प्रकरणी तसेच सामाजिक क्रांतिविषयीही उठवीत आहे. सूत्र व्यवहार ठरविण्याचा नि जन्मजात जातिभेद प्रत्यहीच्या आचारणात तोडून दाखविण्याचा प्रयोग माइया मते रत्नागिरी नगरात मोठ्या प्रमाणात नि त्या खालोखाल मालवण नगरात यशस्वी झाला आहे. प्रयोग हा प्रयोगशाळेतील एका कोपच्यात जरी यशस्वी झाला तरी त्यामुळे सिद्ध होणारी शक्यता नि नियम हे सर्वसामान्य असल्याने तो त्या प्रमाणात यशस्वीच समजला पाहिजे. यासाठी आपण मागितलेला सक्रिय पुराबा 'काय करता ते दाखवा' ची मागणी रत्नागिरीचा जाति उच्छेदक पक्ष आपल्यापुर्ती तरी आपणास कृतीनेच घेऊ इच्छित आहे. वास्तव त्या पक्षाच्यावतीने हे आमंत्रण मी आपणास धाडीत आहे.

जातिभेद तोडण्याचा बहुतेक व्यावहारिक कार्यक्रम रोटीबेटी तोडण्यात सामावलेला असतो . जो गेटीबेटी तोडतो तो वेदोक्तबंदी वा स्पर्शबंदी तोडतोच तोडतो. बेटीबंदी तेवढी उरते, पण ती काही प्रत्येकी प्रत्येकाला तोडण्याची गोष्ट नव्हे. वधुवरांचाच तो पृथक प्रश्न, इतरांनी तसा मिश्रविवाह धर्मबाह्मा वा बहिष्कार्य मानला नाही नि त्या जोडप्यास इतर विवाहितांप्रमाणेच सव्यवहार्य मानले, म्हणजे संपले. वास्तव जातिभेद व्यवहारात तोडीत असल्याच्या कोणत्याही वेळी घाऊक प्रमाणात झटकन देता येईल असा निर्विवाद पुरावा म्हणजे त्यात रोटीबंदी प्रकटपणे (जाहीरपणे) सोडून दाखबिणे हाच होय. हे ध्यानात घेऊन आपल्या आगमनाचे प्रसंगी साधारण कार्यक्रम ठेवू.

१) आपण एका पंधरवड्याचे आत–बाहेर सवडीप्रमाणे

रत्नागिरीस यावे, येण्याचे आधी एक आठवडा आगाऊ कळविण्याची तसदी घ्यावी.

२) पतितपावना' मध्ये देवळच्या भरसभामंडपात सरासरी एक हजार ब्राह्मण, मराठा, वैश्य, शिंपी, कुळवाडी प्रभृति अनेक स्पृश्य मंडळचे, प्रतिष्ठित प्रमुख नागरिकांपासून तो कामकाज्यापर्यंत सर्व वर्गाचे स्पृश्यासह ज्यात 'अस्पृश्य' महार,चांभार मंडळी जेवतात इतकेच नव्हे तर महार, चांभार मंडळी भंगिबंधुसहित सरमिसळ पंगतीत बसतात. असे टोलेजंग सहभोजन आपल्या अध्यक्षतेखाली होईल अशी सहभोजनी श्री. राजभोज, पतित पावनदास सकट इत्यादी पूर्वास्पृशांचे समक्ष नि सह अनेकवार झाली आहेत.

३) आपली इच्छा असल्यास स्त्रियांचेही एक सहभोजन होईल.त्यात ब्राह्मण,क्षत्रिय,वैश्वादितप्रतिष्ठित कुटुंबातील स्त्रिया प्रौढ नि तरुण आपसल्या महार, चांभार, भंगी प्रभति धर्मभगिनीच्यासह पंगतीत सरमिसक जेवतील.

४) या सहभोजकांची नावे प्रकटपणे (जाहीर) वर्तमानपत्री प्रसिद्धीली जातील. ही अट मान्य असणारासच सहभोजनात घेतले जाईल.

५) येथील भंगी कथेकन्यांची किंवा आपगणाबरोबर पूर्वास्पृश्य सुयोग्य कथेकरी कोणी येतील तर त्यांची कथा रात्री होईल. देवळात इतर त्या भंगी कथेकप्यास ओवानून रीतीप्रमाणे त्यांचे पायीही शेकडो अब्राह्मण चांभार मंडब्ळी दंडबत करील,. श्री. काजरोळकर यांचा तसा सन्मान गेल्या गणोशोत्सबी केला होता.

६) आपली इच्छा प्रतिकूल नसल्यास आपले एक व्याख्यानही व्हावे असा.

७) कार्यक्रमाची जागा पतितपावन मंदिर श्रीमंत भागोजीशेठ किरांच्याच सत्तेचे आणि सहभोजनादिक प्रकरणी "जप कलल का. गोच भाग घेणा त्वायु तिसत्य तेच भाग घेणार त्यामुळे तिसत्या कोणाचाही संबंध तिथे पोचणार नाही आणि म्हणूनच नैबंधिक (कायदेशीर) अशी कोणतीही अडचण येण्याचा संभवसुद्धा नाही.

८) ही सर्वात महत्त्वाची गोष्ट ही की अशी लहान मोठी दीडशेवर सहभोजने इथे झाली असतानाही नावे छापून भाग घेणाऱ्या हजारो सहभोजकापैकी कोणाच्याही जातीने कोणासही जाति बहिष्कार्य टरविलेले नाही. उलट सहभोजन हवे त्याने केले वा केले नाही, तरी तो प्रश्न ज्याचा त्याचा. ते जातिबहिष्कार्य कृत्य नव्हेच हेच येथील आजचे धर्मशास्त्र होऊन बसले आहे! ती वस्तुस्थितीही आपण समक्ष अवलोकालच.

हा कार्यक्रम झाला म्हणजे हा राष्ट्र—ीय प्रश्न सुटला असे मानण्याइतका कोणीही मूर्ख नाही पण तशाने वात्याची दिशा कव्ठते. आपणास काही सक्रिय आरंभ हवा आणि जर सहा हजार वर्षाच्या बलवत्तर रूढी सहा वर्षात एवढ्या प्रमाणावर इथे केवळ मनः प्रवर्तनाने मोडता येतात तर इतरत्र येतीलही ही निश्चिती वाटण्यास हरकत नाही. एवढ्याचसाठी आम्ही हे आमंत्रण देत आहोत.

आम्ही हिंदू, आपण हिंदू या पिढ्यानूपिव्दाच्या धर्मबंधुत्वाच्या स्मरणासह हृदयात जे उत्कट ममत्व उत्पन्न होते त्या ममत्वाने हे अनावृत्त प्रकट आमंत्रण घाडीत आहे.

आपला माझा काही वैयक्तिक स्नेहही आहेच, त्या स्नेहासाठी म्हणून तरी हे प्रेमपूर्वक आमंत्रण स्वीकारावे.

आमच्या पक्षाच्या दोघातिघा प्रमुख पुढाज्यांच्या सह्या ह्या पत्रावर त्यांच्याही उत्कट इच्छेस्तव घेऊन हे पत्र धाडीत आहोत. कळावे लोभ असावा.

ही विनंती,

आपला

वि. दा, सावरकर, डॉ. शिंदे

रा. वि. चिपव्ळूणकर, M.A.LL.B

दत्तोपंत लिमये B.A.LL.B

संपादक : सत्यशोधक

पुनश्च : या पत्रातील आमंत्रण स्वीकारण्याची इच्छा आपण उत्तरी दर्शविल्यास येथील जात्युच्छेदक पक्षीय शंभर प्रमुख नि प्रतिष्ठित अशा सर्व जातीच्या नागरिकांच्या सह्याने प्रकट आमंत्रणही आपणास रीतसर धाडू. कळावे लो.अ.ही.वि

आपला

वि.दा.सावरकर

संदर्भ – पत्र व्यवहारातून, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर
संपादक – विजय सुखाडे
प्रकाशक – देवचंद विश्वनाथ अंबोद
तथागत प्रकाशन कल्याण (पूर्व) जि. ठाणे
श्रस्तावना – डॉ. भालचंद्र फडके / संस्करण १६,
पृष्ठ १५६ ते १६३

आर्यों की महान विद्या

ईश्वर प्रदत्त चार वेद

वेद	प्राप्तकर्त्ता	विषय
ऋग्वेद	ऋषि अग्नि	ज्ञान
यजुर्वेद	ऋषि वायु	कर्म
सामवेद	ऋषि आदित्य	उपासना
अथर्ववेद	ऋषि अङ्गिरा	विज्ञान

ऋषिकृत् ग्रन्थ

छः अङ्ग

१. शिक्षा
२. कल्प
३. व्याकरण
४. निरुक्त
५. छंद
६. ज्योतिष्

छः उपाङ्ग

दर्शन	रचियता
१. पूर्वमीमांसा	जैमिनि मुनि
२. वैशेषिक	कणाद् मुनि
३. न्याय	गौतम मुनि
४. योग	पतंजलि मुनि
५. सांख्य	कपिल मुनि
६. वेदान्त	व्यास मुनि

वेद	उपवेद	उपवेद का विषय	ब्राह्मण ग्रन्थ
ऋग्वेद का	१. आयुर्वेद	वैद्यक शास्त्र	१. ऐतरेय ब्राह्मण
यजुर्वेद का	२. धनुर्वेद	राजनीति विद्या	२. शतपथ ब्राह्मण
सामवेद का	३. गान्धर्ववेद	गानविद्या	३. साम ब्राह्मण
अथर्ववेद का	४. अर्थवेद	शिल्प विद्या	४. गोपथ ब्राह्मण

दस उपनिषद्
१. ईश २. केन ३. कठ ४. प्रश्न ५. मुण्डक
६. माण्डूक्य ७. ऐतरेय ८. तैतिरीय ९. छान्दोग्य १०. बृहदारण्यक

ऋषि निर्देश - इनमें भी जो-जो वेद विरूद्ध प्रतीत हो उसे छोड़ देना क्योंकि वेद ईश्वरकृत होने से निर्भ्रान्त, स्वतः प्रमाण, अर्थात् वेद का प्रमाण वेद से ही होता है ब्राह्मणादि ग्रंथ परतः प्रमाण अर्थात् इनका प्रमाण वेदाधीन है।

आर्य विद्या का प्रवेश द्वार-"सत्यार्थप्रकाश एवं ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका"